Chap-3

अध्याय तीन

समीक्षा–

राष्ट्र/चिन्तन का राजनैतिक परिवेश/सामाजिक अवधारणा/
कविता में संत्रास के स्वर/व्यक्ति और समष्टि जन
पीड़ाएँ/आत्मसन्निहिति/गीतात्मक संवेदनाएँ।

कविवर रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' के प्रकाशित सग्रह विषय–वैविध्य की दृष्टि से अत्यन्त विस्तृत और विशाल है। 'तरुण' की सुदीर्घ काव्य साधना व संवेदनशील लेखनी से जो प्राण–पोषण काव्य हिन्दी को भेंट किया है– उसकी समीक्षा करने पर कवि के अनेक रूप सामने आये हैं, यथा–'तरुण' आशा, आस्था, विश्वास और कर्मठता के कवि हैं, वे दीन मानवता और धूल–भरे पथों पर भटकते करुण जीवन के कवि है; वे प्रजातान्त्रिक मूल्यों के कवि है, राष्ट्रीय भावना के उन्मत्त कवि है, जीवन–सीमान्तों के कवि हैं, वे सामाजिक पीडा व आधुनिक जीवन सत्रास के कवि है, आदि,आदि। 'तरुण' के काव्य में निहित नाना–प्रवृत्तियों की समीक्षा इस अध्याय के अन्तर्गत की गई है।

राष्ट्र

कविवर 'रामेश्वर लाल खण्डेवाल 'तरुण' उन्हीं सच्चे कवियों में से हैं जो किसी वाद–विशेष की प्रतिबद्धता से जुड़े हुए नहीं है और काव्य के स्वतन्त्र लोक में, स्वस्थ और सहज वायु के बीच, रहकर काव्य साधना करते रहे । फलतः उनके काव्य में राष्ट्र–प्रेम की पवित्र एवं सच्ची अभिव्यक्ति हुई है । 'तरुण' की काव्य–दृष्टि जहाँ एक ओर स्वस्थ है वहीं दूसरी ओर विशुद्ध मानवीय कल्याण की संवेदनाओ से जुडी है । इसलिए उनके काव्य मे राष्ट्र–प्रेम की पवित्र भावना उभर–कर सामने आई व करोडों इसानों के दु:ख–दर्द के प्रति अपार सहानुभूति के क्षण प्राप्त हुए । उनके काव्य–संग्रहों में राष्ट्र–प्रेम की कविताओं की संख्या कोई बहुत अधिक नहीं है फिर भी स्वस्थ दृष्टि ने उनके महत्त्व को स्थायी बना दिया है । वैसे भी संख्या नहीं, दृष्टि सम्पन्नता ही अधिक मूल्यवान होती है । उनके काव्य में उसका स्वरूप विश्लेषण करने से पूर्व राष्ट्र–प्रेम के सच्चे स्वरूप से परिचय प्राप्त करना समीचीन होगा ।

राष्ट्र–प्रेम मन की वह शक्ति है जो त्याग, उत्सर्ग और उत्साह को जन्म देती है। प्रेम हिसाब–किताब की चीज नही हिसाब–किताब करने वाले आदमियों को खरीदा जा सकता है पैसे के बल पर, पर प्रेम को खरीदा नहीं जा सकता न पैसे से, न भय से और न आतंक से । वह तो स्वयम्भू होता है । ऐसा स्वदेश–प्रेम उसी व्यक्ति को हृदय में पल्लवित हो सकता है जो अपने देश के सच्चे स्वरूप से परिचित है । आज देश–प्रेम पर ऊँचे मंचो से धुँआधार भाषण देने वालों की कोई कमी नहीं है इस देश में । पर उनमें से कितने ऐसे हैं जो नक्शा देखकर भी अपनी भूमि को पहचान सकते हैं। कितने ऐसे हैं जिन्हे खेतों की हरियाली, मजदूरों और किसानों की फूस की झोंपडी में पलती भीषण गरीबी और भयंकर पीडा का अहसास है। उनसे खेतो की हरियाली जितनी अनजान है, गरीबी का अहसास भी उतना ही दूर है । ऐसे लोग राष्ट्र–प्रेम के 'लेक्चर' तो दे सकते हैं पर राष्ट्र को प्रेम नही कर सकते । राष्ट्र–प्रेम का सच्चा स्वरूप राष्ट्र की आत्मा से साक्षात्कार में निहित है, राष्ट्र के करोड़ो प्राणियों के दुख–दर्द के साथ जुडा है, उसके अतीत गौरव की महिमा और आचरणगत ज्ञान से और वर्तमान के जीवन्त सत्य से संलग्न है। देश–प्रेम के माध्यम से अतीत और वर्तमान दोनों 'अपने' हो जाते है, दृष्टि सहानुभूति का विस्तार पा जाती है और हृदय करुणा और त्याग से भर उठता है, सबकी कल्याण साधना ही राष्ट्र–प्रेम का आचरण होता है।

'तरुण' के काव्य मे राष्ट्र–प्रेम के इसी सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं । देश के भूत, भविष्य और वर्तमान से उनका गहरा परिचय है। खेतों, खलिहानों, पेड़–पौधो, नदी–पोखरो, गली–पगडडियों के साथ ही साथ झोंपडियो मे पलते दु:ख–दर्द, करुणा और ममता को उन्होंने अपना बना लिया है । परिणामत: उनके काव्य मे राष्ट्र–प्रेम की संवेदना की अपूर्व एव रसमय अभिव्यक्ति हुई है । राष्ट्र की प्राकृतिक वैभव से सम्पन्न भौगोलिक परिवेश के प्रति कवि का विशेष आकर्षण एवं गहन रागात्मक लगाव रहा है।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता–संग्राम की पृष्ठभूमि में जब कविवर 'तरुण' ने अपनी ऑखें खोली थीं तो जलियॉवाला बाग से शहीदो के लहू की ज्वाला अभी फूट ही रही थी ('तरुण' का जन्म सन् 1919 ई0 मे हुआ था।)। आगे चलकर नित–प्रति देश की स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर चढने वाले शहीदों के लहू की चिंगारियॉ बालक रामेश्वर के संवेदनशील हृदय को निरन्तर उद्वेलित एवं आहत करती रहीं और बालकवि के हृदय से राष्ट्रवादी भावों से अनुप्राणित श्लोक फूटने लगे जो यद्यपि बाल–सुलभ अटपटी वाणी में है तथापि भाव–भंगिया की दृष्टि से विशेष महत्त्व के हैं –

"सुन्दर भ्रमर अंबुज प्रसूनों में हैं कलरव कर रहे,
चहुँ ओर हरियाली हरी, पर खग कुतुहल कर रहे,
चातक कहीं गुंजार कर, हैं वन–छटा से मोह रहे,
उधर आनन्द मंगल हो रहे, यहॉं देशहित नर मर रहे ।" [1]

स्पष्ट है कि कविवर 'तरुण' के हृदय में बाल्यकाल से ही राष्ट्र–प्रेम के संस्कार अत्यन्त प्रबल रूप मे दृष्टिगोचर होते हैं । सन 1932 ई0 लिखी गई इस छोटी–सी कविता– 'वन–छटा'– में एक ओर मनमोहक हरियाली, पक्षियों का कलरव, अंबुज प्रसूनो में भ्रमरों का गुजार आदि आनन्द–मंगल तथा इसके विपरीत दूसरी ओर देश के भीतर स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने प्राणों का उत्सर्ग करते असंख्य देशभक्त वीर ! इस विरोधाभास पर कवि का बाल–हृदय अत्यन्त द्रवित हो उठा है।

इस देश के इतिहास, साहित्य, सस्कृति, इसके अतीत व सांस्कृतिक अवस्थाओं, इसके उत्थान–पतन, उच्चतम जीवन–मूल्यों, मर्यादाओं, परम्पराओं के साथ कवि के गहरे सरोकार उसकी कविताओं में अभिव्यक्त हुए है । अपने देश के बहुविध विकास एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए उच्चतम जीवन–मूल्यों से ओत–प्रोत 'तरुण' का काव्य देशवासियो के लिए अत्यन्त प्राणपोषक बन पड़ा है। इस सम्बन्ध मे कवि की जीवन–दृष्टि व संस्कार विषयक अपनी मान्यता को 'तरुण' अपने प्रथम काव्य–संग्रह 'प्रथम किरण' में इस प्रकार स्पष्ट किया है – ***"सच्ची काव्य–साधना प्रकाशपूर्ण, दिव्य, उच्चगामी, निर्मल और पौरुषवान् जीवन की ओर ले जाने में पूर्ण–समर्थ है । यदि मैं अपने पथ पर आगे चलकर कभी ऐसे जीवन का दर्शन कर सका और अपनी आन्तरिक सौन्दर्य–सृष्टि को बाहर व्यक्त कर सका तो अपने काव्य जीवन की सफलता समझूँगा ?"*** [1]

'तरुण' के प्रथम काव्य–संग्रह–'प्रथम किरण' की प्रथम कविता– 'राष्ट्रगीत' – देश–प्रेम से ओत–प्रोत है। सग्रह में इस कविता के क्रम को देखकर सहज ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि के हृदय में राष्ट्र के प्रति कितना अधिक प्रेम है, अथवा यों भी कहा जा सकता है कि 'तरुण' की काव्य–यात्रा राष्ट्र–प्रेम से ही प्रारम्भ होती है। इस संग्रह की प्रथम कविता – 'राष्ट्र–गीत' के पश्चात् दूसरी कविता 'वन्दना' –परमात्मा को समर्पित है । इससे स्पष्ट है कि कवि के हृदय में मातृभूमि के लिए प्रभु से भी प्रथम स्थान है। उक्त कविता 'राष्ट्रगीत' में प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र–प्रेम की घनी व गहरी अभिव्यक्ति हुई है।

भारत महान देश है, महिमामय है, इसलिए नही कि वह विशाल भूखण्ड है वरन् इसलिए कि वह ज्ञान की परम्परा का, सभ्यता और संस्कृति का आदि संस्थापक है, आर्य सस्कृति का मुकुट है, धर्म और साहित्य, कला और संगीत का आदि पुरस्कर्ता है –

"महिमामय है देश हमारा।
प्रथम सभ्यता का उन्नायक, युग–युग की महिमा से मण्डित,
शुद्ध ज्ञान का आदि–स्रोत यह महादेश प्राचीन अखण्डित,
भव्य आर्य–संस्कृति का स्वामी, सृष्टि–मुकुल, जन–मन का प्यारा ।

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'वन–छटा', पृष्ठ 332

महिमामय है देश हमारा ।
ब्रह्म–ज्ञान की ज्योति मनोहर फूटी सब से प्रथम यहीं पर।
अमर चिरन्तन आदर्शों का पालन है नित हुआ यहीं पर।
यहीं आर्य–ऋषि–कम्बु–कंठ से साम–गान की फूटी धारा।
महिमामय है देश हमारा ।" [1]

राष्ट्र के गौरवशाली अतीत, उसकी भव्य वैदिक –युगीन सास्कृतिक विरासत तथा विश्व को उसके प्रदेय के प्रति तथा सूर्य, चन्द्रमा, तारे, सागर, नदियॉ, पशु–पक्षी, धर्म, शिल्प, साहित्य तथा कला के प्रति कवि का गहरा अनुराग एव श्रद्धा आदि इस कविता में मुखरित हुए हैं ।

"इस देश की जलवायु, उसका इतिहास, उसकी पूजा और उसकी वन्दना से कवि का हृदय भरा हुआ है ।" [2] – से राष्ट्र–प्रेम के अमर गायक माखन लाल चतुर्वेदी की कवि के विषय में व्यक्त की गई यह धारणा 'तरुण' के काव्य की सही व्याख्या प्रस्तुत करती है। वास्तव में स्वदेश–प्रेम कवि को संकीर्ण दायरे से उठाकर प्रेम की विस्तृत भूमि पर ले गया है । देश की जलवायु, प्रकृति, पेड़–पौधे, ग्राम, ग्रामीण सभी उसके लिए प्रेम के जीवन्त विषय बन गये हैं और हरियाले वृक्षों की पंक्तियों की छाया में से भगवान विश्वनाथ के मन्दिर के पवित्र घंटों का पवित्र–संगीत किसी के भी मन मे पूजा की भावना जगाने में समर्थ है–

"दल–सम्पन्न हरित वृक्षों पर गाते विहग प्रभाती,
कभी विहग–माला गंगा के नभ पर हो उड़ जाती ।
आती पावन विश्वनाथ के मन्दिर की दूरस्थित –
श्रवण–सुखद मंजुल घंटा–ध्वनि करती अम्बर गुंजित।" [2]

सच्चे स्वदेश–प्रेमी को गगा का यह पवित्र तट, हरियाली, वृक्ष–पंक्ति, भगवान विश्वनाथ के मन्दिर की घंटा–ध्वनि–सभी मे प्रेम की मधुरता का निवास लगता है। यही देश के गौरव की अनुभूति है, आत्मा का विस्तार है ।

देश–प्रेम के इन अनुभूत क्षणों में कवि के लिए ग्राम, ग्रामीण और ग्रामीण वधुऍ, बालक सभी प्रेम के धागे में बंध जाते हैं और उनके मधुर स्वप्न कवि के स्वप्न हो जाते है। कवि उनके स्वप्नों के साथ एकात्मकता के साथ गा उठता है –

"उछल रहे कृषकों के बच्चे ले–ले हाथों में लकड़ी,
सोच रहे बातें भविष्य की उनके मन में खुशी बड़ी,
गायें दूध दुहावेंगी, खेतों में बालें होवेंगी,
दूध, दही की नदी बहेगी, भाभी छाछ बिलोवेंगी।" [3]

गन्ने के जर्जर खेतो में प्राणो को सिहराती रागिनी, जर्जर दीन घरों में टिमटिमाता म्लान दीपक और तम की काया को कॅपाती ग्रामीण कुत्ते की भयावनी आवाज किसी भी ग्राम–प्रेमी और स्वदेश–प्रेमी के मन को ही आकर्षित कर पाती है –

"गन्ने के खेतों पर से हो एक रागिनी देहाती,
किसी कंठ से फूट आ रही है प्राणों को सिहराती,
इधर–उधर हैं दीन घरों में म्लान दीप टिमटिमा रहे,
दूरी पर है श्वान भूँकते, तम की काया कँप जाती।" [4]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'राष्ट्र गीत', पृष्ठ 317.
2 वही, 'गगा तट का स्वप्न', पृष्ठ 200
3 वही, 'सावन', पृष्ठ 185
4 वही, 'एकान्त क्षणो में', पृष्ठ 146

तम की काँपती छाया में टिमटिमाते दीपक का प्रकाश एवं देहाती रागिनी की करुणा किसी गहन परिचित हृदय मे ही पैदा हो सकता है – उसी हृदय मे, जिसने हृदय की गहराई में बैठकर उसे देखा हो, समझा हो, उससे प्यार किया हो ।

'गॉव की सॉझ' कविता मे तो कवि पूरी तरह से डूब गया है। कवि ने ऑख खोलकर देखा है अपने गॉवों को, उसके सौन्दर्य को, उनके दु:ख दर्द को, उनके आनन्द और उल्लास को–

"ग्रीवा में दे ग्रीवा अपनी, निज माँ को जिह्वा से मल–मल,
दुग्ध–धवल गौरांगी बछिया चटा रही तन अपना रोमिल।
कटहल के पेड़ों के नीचे करता है ग्वाला गौदोहन,
खेल रहा है धूलि–धूसरित अर्धनग्न उसका शिशु सोहन।" [1]

ग्रामीण जीवन के ये चित्र रसमय तल्लीनता और प्रेमोद्भूत अनुभूति के परिणाम हैं । आचार्य पण्डित शुक्ल तो इन्ही में देश–प्रेम के सच्चे स्वरूप का निवास मानते हैं।

अतीत का वैभव देश–प्रेम के लिए जितना महत्त्वपूर्ण है वर्तमान की कर्मठ भुजाएँ भी उतना ही महत्त्व रखती हैं । एक निर्माण की प्रेरणा देता है तो दूसरी निर्माण की तल्लीनता प्रदान करती है । कठोर परिश्रम करते नर नारी देश–प्रेम के पवित्र मार्ग के पथिक ही तो होते है । श्रम जीवन का ही नहीं, प्रेम का भी आधार होता है –

इस ओर कहीं पर अनति दूर
तरुओं में कुछ श्रमजीवी नर –
लकड़ी का लट्ठा चीर रहे
आती जिसकी ध्वनि घ–घ–घ।" [2]

इस प्रकार अनेक कविताओं मे भौगोलिक परिवेश के प्रति का अनन्य प्रेम देखने को मिलता है जिनमें 'मरु का चन्द्रोदय', 'ओस–कण', 'गॉव की ओर', 'दो चिडियॉ', 'पावस–श्री', 'हरी–घास', 'एकान्त क्षणों में', 'प्रकृति की गोद में', 'खेल', 'गॉव की सॉझ', 'बड़ी बहन प्यारी 'गुलाब' की स्मृति में', 'शक्ति का सौन्दर्य–स्वप्न', 'संसार', 'सरसों फूली', 'प्रकृतिः जीवन का आधार', 'गेंदा के फूल', 'चिडियाँ', 'निर्जन तट', 'खेत की ओर', 'ग्राम–वधू' आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इन कविताओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अपने देश के एक–एक रज–कण के साथ कवि का हृदय गहरी रागात्मकता के साथ घुल मिल गया है। देश की माटी का एक–एक स्पंदन कवि के भीतर अन्तर में जाकर बज उठा है और वही ध्वनि मानो कविता के रूप में अपने पूरे वेग से प्रस्फुटित हुई है जो अपने देश की मिट्टी और जलवायु से पूरी तरह से जुड़ी हुई है।

राष्ट्र–प्रेम का एक दूसरा स्वरूप भी है : अनेक कवियों ने देश–भक्ति के गीत गाये और देश की स्वतन्त्रता के लिए देशवासियों के हृदय मे देश पर मर–मिटने की भावना के भाव को जाग्रत करने के लिए इसी भावना को अपने काव्य मे सर्वोपरि स्थान दिया । देश–प्रेम के इन्ही भावों से पूर्ण तरानों को गाते हुए अनेक शहीद फॉसी के तख्ते पर झूल गये और काल–कोठरियो में बन्द हो गये । कवि 'तरुण' ने इस प्रकार के देश–प्रेम की भावना से ओत–प्रोत तराने भी खूब गाये हैं जिनमें अनेक उद्बोधन –गीत भी हैं । इन्ही उद्बोधन – गीतों से प्रेरित होकर डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक ने कहा है– ***"कवि 'तरुण' ने अपनी युवावस्था में अनेक उद्बोधन–गीत लिखे हैं । ऐसे गीत लिखे जो थके–हारे मनुष्य को नैराश्य और कुण्ठा के कूप से बाहर निकाल कर जीवन–संघर्ष के राजमार्ग पर छाती तानकर खड़ा ही नहीं करते वरन् बाधाओं से जूझने की***

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'गाँव की साँझ', पृष्ठ 217
2 वही, 'गाँव की ओर', पृष्ठ 215

शक्ति भी देते हैं । उनके ये गीत संजीवनी हैं जो अवसाद और निराशा के अन्धकार को काट कर प्रकाश की भास्वरता पैदा करने में समर्थ हैं ।" [3]

सन् 1934 में लिखी गई 'मातृभूमि के श्री–चरणो पर' शीर्षक कविता में तो कवि का मातृभूमि के प्रति अपार प्रेम फूट पड़ा है। भारत देश की मिट्टी, जिसने प्रणवीर प्रताप, शिवाजी, भीम तथा अर्जुन आदि वीरो को पैदा किया है, वही भूमि विश्व की जीवन–दात्री होकर भी स्वयं मूर्छित पडी है । जो अग्रेज यहॉ अतिथि बनकर आये थे, वही उसके भाग्य की रेखाओ को मिटा रहे हैं । कवि अपनी प्रखर वाणी मे आह्वान करता है कि देश के वीरो ! अब नेत्रो से अंगारे उछालने और देशपर मर–मिटने के लिए तत्पर हो जाने, वज्र–सी भुजाओ से मुट्ठी बॉधकर भृकुटि ताने, छाती खोलकर ऐसा प्रचण्ड बवण्डर उठाने की आवश्यकता है जिससे धरती और आकाश दोनो कॉप उठे–

"नेत्रों में अंगारे उछले मरने–मिटने को हों तत्पर,
युगल भुजाएँ वज्र–दंड–सी करके अंग प्रचण्ड बवण्डर।
करें धनुर्टंकार भयंकर, अम्बर–मही कँप उठे थर–थर।
मुट्ठी बाँध, भृकुटि को ताने, छाती आगे किए खोलकर।" [1]

कवि अपनी ओजपूर्ण वाणी में आह्वान करता है कि महामृत्यु को चुनौती देने का यही उचित अवसर है। कविता के अन्त मे कवि अत्यन्त द्रवित हृदय से मातृ–भूमि को नमन करते हुए अपने हृदय की अव्यक्त पीडा को रेखांकित करता है कि मातृभमि की बेडियाँ कटने पर ही उसके हृदय की दु खदायी पीडा मिट जायेगी । राष्ट्र–प्रेम के अत्यन्त उन्नत भावो से परिपूर्ण इस कविता में कवि का राष्ट्र–प्रेम सच्ची रागात्मकता के साथ अभिव्यक्त हुआ है ।

सन् 1938 ई0 मे लिखी गई 'वसन्त' नामक कविता कवि की राष्ट्रीय चेतना की धार और चमक को ऑकने के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है । पक्षी–दल, सरिताए, तरुवर, वन मे मृग–दल, लताएँ, कलियॉ, तितलियॉ – सब के भीतर वसन्त ने नवचेतना और नवोल्लास भर कर उन्हें स्वच्छन्द कर दिया है, किन्तु हम भारतवासी अभी भी बन्दी हैं – यह जानकर कवि का हृदय चीत्कार कर उठा है–

"हम बंदी हैं ! – नभ में उड़ता बन्धन–हीन अहा, पक्षीदल ।
हम बंदी हैं ! – अहा, गा रहा सरिताओं का कोमल हिय–तल!
हम बंदी हैं ! – अहा, लहलहा रहा हरित कोयल तरु पीपल!
हम बंदी हैं ! – अहा, चौकड़ी भरता वन में चपल मृगीदल!" [2]

इसी प्रकार देश–प्रेम की उच्च भावना से ओत–प्रोत 'रक्षाबन्धन' (रचनाकालः सन् 1939 ई0) शीर्षक से एक लम्बी कविता भी उल्लेखनीय है । इसमें बहन के द्वारा राखी बांधते समय देश–भक्त वीर भाई और बहन के उद्‌गारों के माध्यम से कवि के हृदय का देश–प्रेम मुखरित हुआ है । जिन अंग्रेजो को हमने आतिथ्य दिया, जिनको हमने अपने दीपक से निकालकर तेल दिया था, उन्हीं ने हमारी मातृभूमि के दीपक को बुझा दिया और हमे पराधीन, बन्दी बना लिया – यह कैसी विडम्बना है! राखी की गॉठ लगाने के स्वर में राणा प्रताप के चेतक की टापों का स्वर सुनना, केसरिया बाना पहनकर रण–क्षेत्र में सम्मिलित होना और मरण को त्यौहार मानकर दरवाजे पर बन्दनवार लगाना– ये कोई सामान्य बातें नहीं, अपितु, एक सच्चे देश–भक्त का स्वर है जो कवि–हृदय मे नृत्य कर रहा है । देखिए–

"कवच बाँध दे इन हाथों में

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'मातृभूमि के श्री–चरणो में', पृष्ठ 337
2. वही, 'वसन्त', पृष्ठ 344

केसरिया कुरता पहना दे!
जंग–चढ़ी तलवार पुरानी
बाँध, गाल पर तिलक लगा दे !
पौ फट चुकी, बजी रण–भेदी,
जाने की बेला टलती है,
मरने का त्यौहार आज,
दरवाजे पर बन्दनवार लगा दे !"

× × × ×

परसों का रोटी खाया मैं
भूखा ही रण में जाता हूँ,
तू रोटी कर, मैं इतने में
शोणित से नहा कर आता हूँ!
भारत की रोटी–पानी से
कते–बुने हैं अंग हमारे !
नश्वर तन के इस कपड़े से
माँ की लाज बचा आता हूँ।" [1]

मेवाडी इतिहास को ऑखों में जगाकर शहीद भाई को देखकर ऑखों में ऑसू न लाना, अपितु उसके दूध–पीते तुतलाते बच्चे को ही, घी का दीप जलाकर रण में भिजवा देने की इच्छा करना, खाना खाने से पहले शोणित से स्नान करना, देश की रोटी–पानी से कते– बुने नश्वर–तन को देश–हित लगा देने की भावनाऍ तो देश–प्रेम की पराकाष्ठा ही कहीं जायेंगी ।

देश में प्रजातन्त्र की स्थापना हो जाने से 'तरुण' का मन खुशी से नाच भी उठा है । अब तो देश में सब कुछ नवीन है। धरती और आकाश अपने है । विहंगों की पॉखों मे वह नई फडक देख रहा है तथा जन–जन की ऑखो में एक नई चमक कवि को स्पष्ट दिखाई दे रही है। अब सब स्वप्न पूर्ण हो सकेगे । कवि के उल्लासपूर्ण हृदय के भावों की एक बानगी यहाँ दृष्टव्य है –

"जन–जन की आँखों में थिरकेंगे अब स्वप्न सजीले,
गेंदे के फूलों से जीवन लहकेंगे गर्वीले,
अरुणोदय के पक्षी–से चहकेंगे कंठ सुरीले,
महकेंगे अब हृदय, मधुर वाणी के मधु से गीले," [2]

इसी प्रकार 'राष्ट्र का मगल भोर' नामक कविता मे भी कवि का उल्लास और आनन्द देखते ही बनता है । प्रजातन्त्र की स्थापना के कारण देश की मिट्‌टी के कण–कण में नई स्फूर्ति और नई आशा का संचार होने का उल्लेख इसमें किया गया है–

"टूट पड़ा युग–युग का लोहे का पिंजरा !
उड़ निकलो, प्राची में कितना रे स्वर्णभरा !
पाँखों की बिसरा सुध, गहरी उड़ान भरो!
अम्बर को पार करो, कण्ठों में तान भरो!" [3]

---

1. 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'रक्षा बन्धन', पृष्ठ 351–352
2. वही, 'प्रजातत्र भारत', पृष्ठ 357
3. वही, 'राष्ट्र का मगल भोर', पृष्ठ 377

'मुक्ति–पर्व' शीर्षक कविता मेरठ के स्वातन्त्र्य–स्तम्भ के उद्घाटन के अवसर पर लिखी गई थी। इसमे कवि ने स्वतन्त्रता–सग्राम के इतिहास का आरम्भ से लेकर अन्त तक चित्रण किया है । शहीद मगल पाण्डे का अत्यन्त श्रद्धा और सम्मान के साथ इस कविता मे स्मरण किया गया है।

इस कविता में 'तिलक', 'जवाहरलाल नेहरू' आदि अन्य देशभक्तों और उनके आजादी के लिए किए गये संघर्ष का स्वप्न बडे भावपूर्ण ह्रदय से किया गया है । इसी प्रकार 'तरुण'–काव्य ग्रन्थावली' में छपी 'जवाहर' के निघन पर', 'आज मिली माटी से माटी', 'महाराष्ट्र केसरी 'तिलक' के प्रति' आदि कविताओं के रूप मे देश के महान नेताओं के प्रति कवि ने काव्य–श्रद्धा–सुमन अर्पित किए है जो वस्तुतः उसके देश–प्रेम के ही परिचायक है ।

राष्ट्र–प्रेम की भावना का एक तीसरा स्वरूप भी है जिसके उल्लेख के अभाव में किसी कवि के काव्य में देश–प्रेम की अभिव्यक्ति का विश्लेषण सर्वथा अपूर्ण ही रहेगा । देश की स्वाधीनता प्रत्येक भारतवासी के लिए एक नया जीवन दान लेकर विकास समृद्धि और मानवीय उल्लास के नये क्षितिज खोलती हुई आई थी, किन्तु शीघ्र ही भारतीय जनता का उसके प्रति मोह भंग होने लगा। देश की लडखडाती हुई आर्थिक व्यवस्था, टूटते हुए जीवन–मूल्यों, उच्चतम जीवन–आदर्शों के प्रति बढ़ती अनास्था, टूटता हुआ समाज,राजनैतिक पतन एवं प्रत्येक क्षेत्र में बढती हुई उच्छृंखलता, समाज में बढ़ते हुए एकाधिकार, आर्थिक विषमता, सामाजिक अन्याय, शोषण तथा अत्याचार इत्यादि को देखकर, इन विडम्बनाओं के प्रति व्यक्ति–मन की चिन्ता, क्षोभ भी आवश्यक और स्वाभाविक ही है । राष्ट्र–प्रेमी कवि 'तरुण' भी इस सत्य को अनदेखा नहीं कर सके और उनका ह्रदय आक्रोश से भर गया । देश का किसी भी रूप में अधःपतन 'तरुण' के लिए नितान्त असह्य है । राष्ट्र–प्रेम की प्रगाढ भावना के कारण ही कवि का स्वर विसंगतियों एवं विकृतियों की इस पृष्ठभूमि में आक्रोशमय, तीव्र, तल्ख तथा व्यंग्यात्मक हो गया है जो उसकी अनेक, विशेषकर स्वाधीनता के पश्चात् की कविताओं में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

'यह लो मेरे हस्ताक्षर' कविता में कवि स्पष्ट कहता है कि उस व्यवस्था की बर्फ की चट्टान को क्रान्ति की प्रचण्ड ठोकर से तोड़ देने का आह्वान कवि करता है । ध्वस की पूरी स्वीकृति के लिए अपने हस्ताक्षर देते हुए कवि आक्रोश में भरकर पूर्ण ध्वंस के लिए गरजता है तो उसकी व्यथा सहज ही स्पष्ट हो जाती है । सम्पूर्ण ध्वसात्मक क्रान्ति के अतिरिक्त अब और कोई निदान नहीं बचा है–

"क्रान्ति की प्रचण्ड ठोकर से
तोड़ दो व्यवस्था के इस बर्फ की जड़ चट्टान को –
जिसमें कि मनुष्यता का
सनातन स्वर चिर बंदी पड़ा है – लुंठित!"[1]

देश की स्वतन्त्रता के लिए हमे अत्यन्त महँगा मूल्य चुकाना पडा था । उसके बाद जनमानस का जो उसके प्रति मोह–भंग हुआ, उसका प्रतिबिम्ब 'नव–मानव' शीर्षक कविता में मिलता है । स्मगलरों और रिश्वतखोरों ने ह्वेल और शार्क मछलियों की भाँति सारी व्यवस्था को चौपट कर दिया है । देश के व्यवस्थापक नेता भ्रष्ट हैं और देश कीडों से खाए जाते वासना–लोलुप रक्त टपकाते, हडके कुत्तों के जबडो में पहुँच गया है –

"अब सूरज अंधा और काला हो गया है –
और वह चुप है स्मगलर,रिश्वतखोर !

1 'आँधी और चाँदनी' 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 27

कीड़ों से खाये–जाते, वासना–लोलुप, रक्त टपकाते –
हड़के कुत्तों के
जबड़ों में पहुँच गया है रे – अब यह मेरा देश, यहाँ से वहाँ!" [1]

लेकिन इस अँधेरे बंदी–गृह से मुक्ति का सन्देश कवि की सबसे बड़ी कामना है । वह देश में व्याप्त पुरानी जर्जर मान्यताओ के खरखराते पत्तों को झाड़ने के लिए नये मानव का आह्वान करता है –

"कुत्ते के कान–से हो गये हैं मुड़ कर –
पुरानी जर्जर मान्यताओं के खरखराते पत्ते !
झड़ने दो इन्हें –
फूटने दो नये रक्ताभ पल्लव !
पृथ्वी पर उतारो, रे –
अब नया मानव !" [2]

इसी प्रकार 'सूरज–था कभी' शीर्षक कविता में उच्चतम पदो पर बैठे राष्ट्र नायको पर व्यंग्य किया गया है। अब उनमें वह तेज नहीं रहा, वे लुज–पुंज दुबके पड़े रहते है । तामसी सत्ताओं के नंगे नाच को देखने के आदी हो गये हैं । उनकी मुट्ठियॉ चुपचाप गर्म कर दी जाने की चारो ओर चर्चाएँ हो रही है । अब तो वह षड़यन्त्रों और कुचक्रणाओं के पक्षधर, कैबरों के एजेण्ट और स्मगलर हो गये हैं । अब देश के जन–मानस का विश्वास उनमे नही रहा है –

"अब कहाँ है सूरज में वह तमतमाहट,
सूरज– था कभी सूरज, तेज–पुंज !
है अब तो वह तेजोहत;– जुड़ी ताप–ग्रस्त,
दुबका पड़ा रहता है लुंज–पुंज!
तामसी सत्ताओं के नंचे नाच देखता रहता है वह रोज" [3]

'रेल की खिडकी से' शीर्षक कविता में कवि ने जनतान्त्रिक मूल्यों के अवमूल्यन तथा विडम्बना पर करारा व्यंग्य किया है कि हमारे देश में गद्दीदार रोलिंग जन–कुर्सी पर अनजाने में ही एक अदद राजनीतिक लोथ, आमलेट की तरह जनता के सामने परोस दी जाती है–

"एक अदद राजनीतिक लोथ
उसके अनजाने में ही
नितम्बपूर्वक, कहीं से समूल उठाई जा कर
किसी गद्दीदार रौलिंग जनकुर्सी पर
कहीं भी
परस दी जाती है,आमलेट की तरह, जनता को !–" [4]

देश में एक बार कुर्सी मिल जाने पर उसे कुर्सीधर छोडता ही नहीं है कवि व्यंग्यात्मक स्वर में कहता है कि कुर्सी को कुर्सीधर छोडे भी तो कैसे? उसके नितम्ब बहुत भारी है तथा तोद भी भारी है । कुर्सी पर एश्वर्य, सुख–सुविधा का गाढा गोंद भी तो

1 'ऑधी और चॉदनी' 'नव–मानव', पृष्ठ 55
2 वही, पृष्ठ 56
3 'हम शिल्पी सत्रास के' 'सूरज–था कभी', पृष्ठ 83
4 वही, 'रेल की खिडकी से', पृष्ठ 42

लिथडा है । इस पर क्रेन या लिफ्ट भी कुछ नहीं कर सकती चाहे कितनी ही मातमपुर्सी कर ली जाये । 'कुर्सी' शीर्षक कविता में कवि का यह व्यंग्यात्मक स्वर सत्ता के भूखे राजनीतिज्ञों की पोल खोलकर रख देता है–

"उठे भी तो कोई कैसे उठे –
कुर्सी पर लिथड़ा है गाढा गोंद !
क्या कर लेगी लिफ्ट –
नितम्ब है भारी,
और भारी है तोंद !
करते रहो मातमपुर्सी ।
ओ–हो री कुर्सी,
हँस–रो री कुर्सी,
काली–गोरी कुर्सी,
सीना–जोरी कुर्सी,
योगिनी कुर्सी, भोगिनी कुर्सी।" [1]

आर्थिक और सामाजिक असन्तुलन से उद्भूत पीडा इन पंक्तियों में मुखर हो उठी है । रोशनियों में थिरकते कैबरे पॉव और परिश्रम से डगमग थके पॉव, दोनों साथ–साथ चल रहे है इस व्यवस्था मे ! गरीब एव सर्वहारा की पीडा को रोशनियों वाले पॉव कहॉ देख पा रहे है? देश में अमीर अत्याधिक अमीर और गरीब अत्याधिक गरीब होता जा रहा है । सम्पन्नता और विपन्नता के बीच खाई बढती ही जा रही है । देश की आर्थिक स्थिति की लचरता और सामान्य जन–मानस का शोषण भी कवि–हृदय को व्यथित कर देता है ।

'अंधडों मे छोड दो – अकेला' शीर्षक कविता में कवि को सत्ता–व्यवस्था के प्रति तीव्र आक्रोश देखा जा सकता है । जीर्ण–व्यवस्था के ध्वस के लिए काले–पीले अंधडो, घिरते अँधेरो, ऑखें चौधियाती बिजलियो तथा धडधड़ाती गाजों में कवि बिल्कुल अकेला रहना चाहता है । वर्तमान व्यवस्था के प्रति मोह–भंग होने के कारण कवि को अब ऑधी–अन्धड़ों में छतों–छप्परों के उडने, भीमाकार पेडों के समूल उखडने आदि के दृश्य भी अच्छे लगते हैं । वह जन–क्रान्ति मे भवन, ताज, सिहासन, झण्डा–पताका, तमगे–वर्दियॉ और राजदण्ड आदि को चिन्दी–चिन्दी होकर उड़ते देखने को उत्सुक है–

"जीर्ण संसार के ध्वंस को बस अब आवश्यक,
प्रचण्ड शक्तियों के महा आगमन को देखने, मन के पैंदे तक महसूसने !
देखूँ–रूद्र शिव–सौन्दर्य –
चौड़ी खुली आँखों में लिए – युगान्तर का सुख, हर्ष, आश्चर्य !
x x x x x x x
जन–क्रान्तियों में, प्याज के छिलकों से ठौर–ठौर –
भवन, ताज, सिंहासन, झंडा–पताका, तमगे–वर्दियाँ, राजदंड
चिंदी–चिंदी हो जाते हैं कैसे – जैसे, रंगीन फूटे फुग्गारे रब्बड़ों के !
मुझे अंधड़ों छोड़ दो बिल्कुल अकेला।" [2]

---

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'कुर्सी', पृष्ठ 46.
2 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'अंधडों में छोड दो–अकेला', पृष्ठ 439

"कविवर 'तरुण' ने एक शलाका–पुरुष, क्रान्तिकारी कवि की तरह इस प्रकार की ध्वंसात्मक एवं सम्पूर्ण क्रान्ति की अभिव्यक्ति करते हुए अत्यन्त निर्भयता और साहस के साथ अपनी काव्य–यात्रा को अनवरत जारी रखा है । इसमें अभिव्यक्ति के गम्भीर खतरे हो सकते थे, किन्तु कविवर 'तरुण' ने उनकी तनिक भी परवाह न किए बिना अपनी राष्ट्र–प्रेम की भावना को किसी भय अथवा लोभ से नपुसंक नहीं होने दिया । कदाचित् राष्ट्र–प्रेम की शुद्ध भावना के कारण ही कवि ने ऐसे खतरे उठाये हैं जिनके प्रति वह अनभिज्ञ नहीं है।" [4]

'राजनीति की सॉंभर झील' शीर्षक कविता में कवि को देश की राजनीति, सॉंभर झील की भाँति ही दिखाई पड़ती है जो बहुत लम्बी, चौडी और गहरी है । इसमे आकांक्षा, सम्बन्ध, मुसकान, प्रतीति, कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति कुछ भी डाल दो – सब कुछ गल–सड़कर नष्ट हो जाता है, और रह जाती है – केवल राजनीति–

"सांभर झील से भी लम्बी चौड़ी है एक झील और भी बड़ी –
जिसमें सब समान है ।
फूल हो या काँटा, पर्वत हो या कंकड़ी :
आकांक्षा, सम्बन्ध, मुसकान, प्रतीति,
कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति –
कुछ भी डालो, सब कुछ उसमें गल–सड़कर हो जाता है –
राजनीति, राजनीति, राजनीति ।" [1]

'चोंचो का खेल' एक ऐसी ही अन्य कविता है जिसमें कवि ने देश की साधारण और भोली–भाली जनता के विरुद्ध हो रहे षडयन्त्र को निरावृत किया है । 'ताबेदार राज्याधिकारी, मूछ–मरोड़ व्यापारी और मुक्कामार गलफुल्ला, निष्काम–सेवक–ध्वजधारी–नेता' – ये तीनों परस्पर समझौते की मेज पर बैठकर स्वतन्त्र भारत की दीन–हीन–असहाय जनता के रक्त को चटकारे ले–लेकर पी रहे है ।

'अभियोग–पत्र' भी ऐसी ही कविता है जिसमें यह संकेत है कि आततायी सत्ता– व्यवस्था से शोषित–प्रताडित जनता अब सजग हो उठी है । यह तारों भरा आकाश मानो उसका अभियोग–पत्र है जो देश के ठेकेदारों को तुरन्त जवाबदेही के लिए जनता द्वारा हस्ताक्षरित होकर पेश है –

"जाग उठी फण–उठाई जनता का –
आततायी सत्ता के नाम
तुरन्त जवाबदेही के लिए
डंकों से लिखा
खुला, हस्ताक्षरित
अभियोग–पत्र ।" [2]

दीन–मानवता के अन्तर्गत रिक्शा चलाने वाले के अतिरिक्त किसान, मजदूर आदि शोषित व दलित वर्ग के करुण चित्रो के साथ दीनतापूर्ण एव अभावग्रस्त जीवन के प्रति कवि की संवेदना उसकी अनेक कविताओ मे व्यंजित हुई है । यह कार्य तो कवि ही कर सकता है जिसने इस भीषण गरीबी को अन्तरतम में जाकर समझा–बूझा है, और जिसका मन इसे देखकर पीडा से फूट पड़ता है।

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'राजनीति की सॉंभर झील', पृष्ठ 446
2 'हम शिल्पी सन्त्रास के' 'अभियोग–पत्र', पृष्ठ 35

कश्मीर की रगीन घाटियो में, सौन्दर्य के अनन्त प्रसार के बीच, पलते हुए अभाव, दु ख–दुरवस्था को देखकर कवि की ममता रो उठी है –

"यह भू–स्वर्ग विरोधाभासी,
श्री–दरिद्रता का सहवासी !
रूप–कुरूप यहाँ मिल रहते,
मानव–नियति–कथा चिर कहते !" [1]

कविवर 'तरुण' अपने राष्ट्र को प्रेम करता है, अपनी धरती से उसका अपूर्व लगाव है, इसलिए वह अपने ग्रामो के ग्रामीणों को प्रेम करता है। उसने केवल ग्रामीण जीवन मे बिखरे सौन्दर्य, प्रेम एवं सात्विक आनन्द को ही नहीं देखा, वहाँ की गरीबी को, अभावों को भी खुली ऑख से देखा है और देखा है अन्याय, अत्याचारो के बीच पलते इसान को–

"कितनी करुणा यहाँ, और कितनी ममता!
क्या इसीलिए है यहाँ अविद्या, निर्धनता?
ये ग्राम–स्वर्ग के हाय, अस्थि–पंजर भू पर,
लायेगा जीवन–रक्त कौन, है किसे पता!
युग–युग से शोषित ये गाँवों के नारी–नर
हैं अर्द्ध–नग्न, चिर मूढ़, क्षुधित, ऋण से जर्जर !
ये जीवन के हित केवल ईश्वर पर निर्भर,
नीचे इनके धरती, ऊपर सूना अम्बर ।" [2]

प्रेम जितना गहन गम्भीर होता है, करुणा उतनी ही तीव्र और तीखी हो उठती है । करुणा–प्रसूत एक और चित्र कवि की प्रेम–भावना को चोट–सी लगाता प्रतीत होता है, चोट खाकर जैसे कवि का मन चीख उठता है। कवि का अपने देश से रागात्मक लगाव है । कवि की एक अन्य रचना 'ऑधी और चॉदनी' की भूमिका मे इस बात का स्पष्ट उल्लेख मिलता है – ***"घोर मरुस्थल के प्रचण्ड भीष्म की एक अर्द्धरात्रि के चाँदनी–धुले उद्दाम अन्धड़ वाले विजन के खुले आकाश के नीचे मैं बचपन में कभी खोया था । आँख खुलने पर जो प्रचण्ड–कोमल, कटु–मधुर प्राकृतिक दृश्य सामने था वह तब से बिम्ब बनकर वर्षों से मेरी चेतना में कहीं खुँसा–पड़ा कसमसाता रहा ।"*** [5]

देश की राजनैतिक, सामाजिक–सास्कृतिक और आर्थिक – अधःपतन के प्रति कवि की चिन्ता–आक्रोश तथा दीन–असहाय जन–मानस के प्रति उसकी सहानुभूति अन्य इन कविताओं में देखी जा सकती है,जैसे –'आज, मेरी सॉस', 'कोकीन का इंजेक्शन', 'गिरवी', 'दलबदलू', 'लोक–सेवा', 'देश–सेवक', 'धत्तेरे की', 'लो, पकड़ो लंगोटा', 'कैमरा', 'डेमोक्रेसी', 'दीप तले छिद्र', 'मैं – मौन मुखर', 'गांधी शताब्दी . शरदोत्सव', 'ध्वंस', 'एक ताजा अभिमन्यु', 'भॉप गई', चॉद और चॉदनी', 'गॉव की ओर' और 'ग्राम–बिरहिणी दीप जलाती' आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'तरुण' के काव्य मे राष्ट्र–प्रेम अपने विभिन्न स्वरूपों में अभिव्यक्त हुआ है । कवि ने देश के भौगोलिक परिवेश, उसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, उसके इतिहास, उसके भूत, वर्तमान और भविष्य आदि को अपने काव्य में ठेठ तक पचा लिया है। दूसरी ओर देश के स्वतन्त्रता–आन्दोलन मे मातृभूमि पर मर मिटने का मन्त्र प्राणो में फूँकने वाले उच्च देशभक्ति

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'कश्मीर की घाटी में', पृष्ठ 129.
2 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'माटी के घर', पृष्ठ 214

के तराने भी गाये है । इतना ही नहीं, स्वाधीनता के पश्चात् विभिन्न क्षेत्रों में हुए मोह–भंग और उसके परिणामस्वरूप देश के जनमानस में उपजी व्यथा–पीड़ा और आक्रोश से भी कवि के गहरे सरोकार रहे है जो देश के प्रति कवि की सच्ची रागात्मकता को रेखाकित करते हैं । 'तरुण' ने अपनी अभिव्यक्ति को किसी स्वार्थ अथवा प्रतिबद्धता से जोड़कर अपने काव्य को सकीर्ण एव स्खलित नहीं होने दिया है, अपितु व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राजनैतिक पूर्वाग्रहों से पूर्णतया निरपेक्ष रहकर एक स्वातन्त्र्य–चेता, चिरन्तन एवं प्रकृत कवि के रूप में, अभिव्यक्ति, के पूरे खतरे उठाते हुए स्वस्थ देश–प्रेम और राष्ट्र के प्रति अपने हृदय के ठेठ गहरे अनुराग को वाणी दी है ।

इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध समीक्षक–चिन्तक डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त के शब्द भी उल्लेखनीय है– ***"आरम्भ में देश की परतंत्रता को देख और स्वातन्त्र्य–प्राप्ति के उपरान्त राजनीति के क्षेत्र में फैली आपा–धापी, स्वार्थ–परायणता और मूल्यों का विघटन देख, उनकी आत्मा को जो कचोट लगी, उसे उन्होंने काव्यमय अभिव्यक्ति प्रदान की है । उनकी इन कविताओं में अपरिपक्व मन का उबाल नहीं है, भावावेग का उफान–मात्र नहीं है,कोरा वागाडम्बर या शब्दजाल नहीं है, देशवासियों के प्रति झूठी सहानुभूति नहीं है, नारेबाजी भी यहाँ नहीं मिलेगी, जो कुछ लिखा गया है, उसके पीछे वर्तमान से असन्तोष है,देश और देशवासियों के प्रति उत्कट प्रेम और सच्ची सहानुभूति है, राष्ट्र को उन्नत और उदात्त बनाने की तीव्र आकांक्षा है ।"*** [6]

इस प्रकार हम अनुभव कर सकते हैं कि एक भावुक कवि की रचनाओं में अपनी धरती, देश एवं राष्ट्रीयता के प्रति अगाध प्रेम व्यथित हुआ है । उसके गीत राष्ट्रीयता की उदात्त परिकल्पनाओ और अटूट आस्थाओ के कीर्ति स्तम्भ रहे है,अपनी धरती की सुगंध उनमे सर्वत्र विद्यमान है तथा अपने देश के प्रति अनन्त प्रेम भी उनमें सर्वत्र देखा जा सकता है।

चिन्तन का राजनीतिक परिवेश

इस सदी के पॉचवे दशक मे देश से अंग्रेजी शासन समाप्त हुआ और देश को स्वाधीनता मिली। देश की स्वाधीनता प्रत्येक भारतवासी के लिए एक नया जीवन दान लेकर, विकास समृद्धि और मानवीय उल्लास के नये क्षितिज खोलती हुई आई थी, किन्तु शीघ्र ही भारतीय जनता का उसके प्रति मोह भंग होने लगा। देश की लड़खडाती हुई आर्थिक व्यवस्था, टूटते हुए जीवन–मूल्यों, उच्चतम जीवनादर्शों के प्रति बढती अनास्था, टूटता हुआ समाज, राजनैतिक पतन एवं प्रत्येक क्षेत्र मे बढ़ती हुई उच्छृंखलता, समाज में बढ़ते हुए एकाधिकार, आर्थिक विषमता, सामाजिक अन्याय, शोषण तथा अत्याचार इत्यादि– को देखकर, इन विडम्बनाओं के प्रति व्यक्ति–मन की चिन्ता, क्षोभ भी आवश्यक एवं स्वाभाविक ही है। यदि कवि का हृदय भी इन परिस्थितियों को देख–महसूस कर व्याकुल हो गया। 'तरुण' इस सत्य को अनदेखा न कर सके ओर उनका हृदय आक्रोश से भर उठा। कवि का यह क्षोभ स्वाभाविक ही है क्योंकि मनुष्य की रागात्मकता जहॉ जिनती अधिक होती है, उसकी विकृति–विसंगति में वह उतना ही अधिक दु:खी एवं विचलित होता है। कवि का स्वर विसंगतियों एव विकृतियों की इस पृष्ठभूमि में आक्रोशमय, तल्ख, तीव्र तथा व्यग्यात्मक हो गया।

इन सब का मूल कारण राजनीति है। देश की राजनीति बहुत लम्बी–चौडी और गहरी है। इसमे आकांक्षा, सम्बन्ध, मुसकान, प्रतीति, कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति कुछ भी डाल दो– सब कुछ गल–सडकर नष्ट हो जाता है, और रह जाती है– केवल राजनीति। कवि का सबसे प्रबल आक्रोश राजनीति के प्रति है। जैसे सॉभर की नमक–झील में जो कुछ भी पडता हैं वह नमक हो जाता है, वैसे ही

"साँभर झील से भी लम्बी–चौड़ी है एक झील और भी बड़ी–
जिसमें सब समान है
फूल हो या काँटा, पर्वत हो या कंकड़ी:
आकांक्षा, सम्बन्ध, मुसकान, प्रतीति,
कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति–
कुछ भी डालो, सब कुछ उसमें गलकर–सड़कर हो जाता है–
राजनीति, राजनीति, राजनीति!
अँधेरी रात में, बाढ़ में गले तक पानी में डूबते–
सुरक्षित स्थान के लिए विपदाग्रस्त लोग भागते हैं जैसे–
वैसे ही 'बचो,बचो' करते हम सब भाग रहे हैं अपनी पोटलियाँ लो–
राजनीति की साँभर झील में से, बोझ से झुकाए अपने काँधे।" [1]

ऐसा लगता है कि राजनीति का सर्वभक्षी दानव जीवन के सारे सौन्दर्य और औदात्य को लीलता जा रहा है। इसी के दुष्प्रभाव से उसके सपनो का राजकुमार–मानव– आज यथार्थ की धरती पर नगा होकर खडा हुआ है। अपने उसूलो के साथ ऑख–मिचौनी खेलता हुआ आज का मानव पूरा का पूरा गिरगिटिया हो गया है–

"दिन हो या रात–
सूनी पगडंडी पर भी आदमी चलता था नि:शक,
मूठ पर रहता था हाथ,

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'राजनीति की सॉभर झील', पृष्ठ 72–73

और मूछ में रहते थे तने बिच्छु के डंक!
धरती पर रहते थे माई के लाल,
और तब आदमी का रक्त होता था लाल!
सुबह—पीला
दोपहर— नीला
शाम को – लाल
और रात को श्याम
– गिरगिटिया हो गया है अब तो आदमी तमाम!" [1]

वह न अपनी हँसी हँसता है और न अपने आँसू रोता है। अपना कहने के लिए उसका कुछ भी नही है, वह शतप्रतिशत उधार की जिन्दगी जी रहा हैं–

"हम जीवितों की तरह कभी जिए ही नहीं,
हमें बलात् जिलाया गया!
बात हमारे गले कुछ उतरी ही नहीं,
बाँस की नाल से जबरदस्ती,
हमें सब कुछ बना—बनाया पिलाया गया।
मोती की आब—से, हम कभी अपनी हँसी हँसे ही नहीं,
हमें गुदगुदी करके हँसाया गया!" [2]

कानों में 'सत्यमेव जयते' की गूँज तो सुनाई पडती है, पर खुली आँखों से वह देखता है कि "सत्ता के घर सत्य—कहार बनकर पानी भरती है।" जीवन इतना जड—यान्त्रिक हो गया है कि मानवीय अस्तित्व की सारी सारवत्ता और सार्थकता समाप्तप्राय हो गई है:

"एक मशीन के पुर्जे की तरह—
दाएँ और बाएँ, आगे और पीछे,
ऊपर और नीचे,
एक बनी बनाई अनी पर हम घूमते रहे,
पीठ पर जो चाबुक बड़ा—
उसे हम चूमते रहे!" [3]

युग—बोध और युग—संत्रास, घुटन, बेबसी, अनास्था, पराजय, हीनत्व, कुण्ठा व पीड़ा से ग्रस्त मानव 'लघु—मानव' बन गया है। आदमी का गिरगिटिया स्वभाव अंत में उसे असहाय स्थिति में ला खडा करता है। 'तस्कर युग के अगणित कसैले चित्र' कवि को 'दीप्त तरल स्वर' मे गीत गाने से रोकते है क्योकि अधमरा, अधजला मनुष्य निस्पंदित हो गया है। दब्बू निर्वीर्य व्यक्ति बेमेल जिन्दगी जीता हुआ फटीचर थैले के साथ 'क्यू' मे लगा हुआ 'सडे प्याज का सीना—झुलसा छिलका' हो गया है। यह दलबदल राजनीति मनुष्य की नियति को 'मौत की एक ठण्डी काली नदी' मे धकेल रही है। यह महाजनी सूदखोर सभ्यता आम आदमी की अतडियॉ खिंचवा रही है। लोक—सेवार्थ फैली सेवा मूलतः स्वार्थ—केन्द्रित व्यक्ति सेवा हो गई है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है जिनसे लगता है कि आम आदमी

1 'खुनी पुल पर से गुजरते हुए' 'आदमी का रक्त', पृष्ठ 77
2 'आँधी और चाँदनी' 'आत्मकथा', पृष्ठ 54
3 वही, पृष्ठ 54

राजनीति की चक्की में बस पिसता ही चला जा रहा है

"तस्कर युग के अगणित
कसैले चित्र भी तो
रड़क रहे हैं आज मेरी आँखों में!
वही पुरानी, काचे घर की किरण–पगडण्डी–
बन कर आ गई है
आज की मेरी नजर।" [1]

इस गन्दगी राजनीति के फलस्वरूप आदमी बारुदी सुरंगों पर बैठा है–

"अब हम सब ऐसे नगर के निवासी हैं
जिसकी जमीन के नीचे
बिछी है बारुद की सुरंगें– धमाकों को छाती से चिपकाए।
पग–पग पर कँटीले–जहरीले थूहर ही थूहर हैं।
नागफनी की बाड़े लगी है,
काँटे तने खड़े हैं पगतलियों से लगाकर आँख की पुतलियों तक।" [2]

'राशनकार्ड के साथ वापस' शीर्षक कविता मे देश की खाद्य–सामग्री नियन्त्रण और वितरण प्रणाली में गरीब पर पड़ती मार को दर्शाया गया है–

"दादी का लाड़ला लछमनवा
'क्यू' में खड़ा–खड़ा थक
पुलिस की चपत से गाल रँगाये,
रुँआसा, दीवाली की
चीनी नहीं मिलने पर
मुड़ा–तुड़ा, दगीला
तम्बाकुई राशनकार्ड न फटीचर थैला लिए
नंगे पाँव,
गैल–गैल,
अपने खपरैल
वापस चला आ रहा है।" [3]

राजनीति के कलुषित खेल के कारण सब मौत की ठण्डी काली नदी पर विहार कर रहे हैं।

'चोचो का खेल' में वह राजनीति की बहुत बडी दावत का जिक्र करते हैं जहॉ पर पटापट चोंचे चल रही है, माल उडाया जा रहा है। ताबेदार, राज्याधिकारी, मूँछ–मरोड व्यापारी, निष्काम सेवक, नेता ध्वजधारी– सभी इस मौज मस्ती में शामिल हैं। मगर सवाल यह है, खाया किसे जा रहा है? कविता की आखिरी पक्ति करीब–करीब सन्न कर देने वाली है–

'लजीज है, खाओ यार,
जल्दी क्या है, जरा आराम से, आज तो है रविवार!'

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'आज मेरी नजर', पृष्ठ 21
2 वही, 'हम ऐसे नगर के निवासी', पृष्ठ 21–22
3 वहीं 'राशनकार्ड के साथ वापस', पृष्ठ 30

चली लम्बी–तीखी चोंच नम्बर दो–
मूँछ–मरोड़ व्यापारी!
चली लम्बी–तीखी चोंच नम्बर तीन–
मुक्कामार, गुलफुल्ला निष्काम सेवक नेता ध्वजधारी!
"पापा! प्लीज! देखने दो हमें चोंचो का यह खेल,
बड़ा मजा आ रहा है, अहा चल रही हैं जैसे गुलेल!
बताओ न ? – गिलबिला, गिलबिला–
तश्तरी में यह क्या है जो टूटता, जुड़ता, बिखरता और बनता?"
"कुछ नहीं राजा बेटा, यह तो है स्वतन्त्र भारत की जनता।" [1]

व्यवस्था के इस दो मुँहे खेल में खुद अपनी सन्त्रस्त हालत का बयान वह कारुणिक शैली में करते हैं। हर चीज उन्हे विकृत नज़र जाती है और ख़ुद ही समझ नही पाते–

"जापानी खिलौने–सा–चाबी से चलता हूँ।
हर चीज अब मुझे लगती है–लुढ़की, विकृत, औंधी
मुझे जाने कैसी–सी हो गई है–
चेतना की चुप्पी, मन का अँधेरा घुप्प, या आत्मा की रतौंधी!" [2]

इतना तो वह समझ गये हैं कि यह स्थिति आसानी से बदलेगी नही। हमें उसे देखने की आदत डालनी होगी। बंद ऑखे कर लेने से तो कठोर यथार्थ की छायाएँ सिमट नही जाएंगी। फिर भी अगर नही देखा जाता, तो उनकी विनम्र सलाह है–

"युधिष्ठिर की तरह
हिमालय की बर्फों में जा गलो।
बेलछी के कैदियों की तरह
आँखों में जलता सुआ भोंकवा लो।
संविधान के जितने हैं सफ़े–
उठक–बैठक करो उतनी ही दफ़े!
जब आँधी आवे तब आकाश में थूको;
अँधेरी गली के बीच गोल कड़ी पूँछ वाले हड़के काले कुत्ते की तरह
आधी रात में भूँको।
माकूल इलाज करवाओ– ब्रेन में करैंट लगवाओ–
या काले नाग से अपने को डसवाओ।
राजघाट या कसौली घूम आओ,
शायद अपनी अमर–अनन्त आत्म–पीड़ा से थोड़ी बहुत राहत पाओ।" [3]

दरअसल यह विनम्र सलाह, उतनी विनम्र नहीं है जितनी ऊपर से नजर आती है। यही इस कविता की खासियत है कि यह बगैर वोकल हुए बहुत गहरे अर्थ–संवेदन जगा जाती है। राजघाट और कसौली का व्यंग्यात्मक इस्तेमाल इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि कल तक 'तरुण' की आस्था इन्हीं में बधी हुई थी, जिसे लाघकर आज वह एक बड़े परिदृश्य को समझने की कोशिश करते हैं।

---

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'चोंचो का खेल', पृष्ठ 37–38
2 वही' 'सन्नाटा', पृष्ठ 64
3 वही, 'देखा नही जाता तो', पृष्ठ 56–57

'तरुण' मानव के गौरव के प्रश्न पर ईश्वर से टकराने का साहस भी अपने अन्दर रखता है। यहाँ तक सत्ता और अमीरी के पक्ष में जा बैठे ईश्वर की खिल्ली उडाने से भी कवि नही चूका। और मजे की बात यह है कि आदमी और ईश्वर का यह झगडा आदमी को तोडता नहीं। उसकी छवि को कुछ और आकर्षण और मजबूत बना देता है–

"चर्चा गरम है–
सत्ता और अमीरी की बड़ी तरफ़दारी कर रहे हैं आप।
इतनी–सी ही बात,
पर, त्यौरी चढ़ा कर बोले साहू–
डेढ़ पसली वाले अपने, तेरी यह औकात।
हमारी महत्ता पर तू यों करे आघात!
बस बात कुछ बढ़ ही गई,
उबल पड़ा मैं, मेरी लाचारी,
कमजोर और गुस्सा भारी,
जैसे, मेरे तन–मन की, आत्मा की नसें बढ़ गई!" [1]

'एडमिनिस्ट्रेशन' तथा 'एकेडेमिक' जैसी शान्त एवं व्यंग्यात्मक कविताएँ कुछ ही पंक्तियों में राजनीति की विद्रूप–स्थितियों को उभार देते है और व्यवस्था के चिकने चेहरे के पीछे छिपे, बडे–बडे धब्बों की ओर इशारा करते हैं–

"तुम क्या जानो अभी
क्या होता है – एडमिनिस्ट्रेशन!
अरे मैयन–
यह नहीं है ऐसन–वैसन
यह तो है– एडमिनिस्ट्रेशन!

x x x x
जिनकी आँखों के आगे सर्वोपरि हैं नेशन
न कि ग्रेचुइटी, प्रोविडेंट फंड और पेंशन–
मजाक नहीं हैं, वे ही करते हैं एडमिनिस्ट्रिेशन!" [2]

इस दौर मे प्रकृति को लेकर लिखी कविताएँ भी अपेक्षाकृत ज्यादा संयत और सहज है। 'पहले इनकी सुन लो' कविता मे कवि को लगता है, उसके लॉन के फूल–फुलझडियाँ पीछे से पल्ला पकडकर, सतृष्ण नेत्रों से निहारते, उसे पुकार रहे हैं। तथाकथित 'सभ्य' समाज की आरोपित व्यस्तताओ पर बडा चुभता हुआ व्यंग्य है–

"खामखाह हर समय मेरे काम में
बाधा पहुँचाते हैं– ये
मानव–संस्कृति के निर्माण में प्रति पल सजग सक्रिय
मैं– संस्कृति का प्रहरी!
और ये मेरे पाँव के रोड़े से बने रहते हैं

---
1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'एडमिनिस्ट्रेशन', पृष्ठ 77
2 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'मैं झगड आया', पृष्ठ 121

हर समय!" [1]

कवि ने राजनीति पर करारा व्यंग्य करते हुए प्राकृतिक उपमानों का सहारा लेकर भावों को अत्यन्त प्रांजलता के साथ अभिव्यक्त किया है–

"ताड़, खजूर, पौधे, तृण–
चले जा रहे हैं धरती से आकाश की ओर;
किरणें, वर्षा की बूंदे–
चली आ रही हैं आकाश से धरती की ओर;
सृष्टि में कब न रहे
दलबदलू!" [2]

इसी प्रकार कवि ने 'डेमोक्रेसी' शीर्षक कविता में भी प्रकृति की सहायता से ही प्रजातन्त्रीय शासन–व्यवस्था की विडम्बना को वाणी दी है–

"ताड़ के और उसके बीच –
"आँखों ही आँखों में इशारा हो गया!"
केले का व्यक्तित्व क्या कुछ यों ही है?
उसका भी कितना तना ठोस है
उसने भी हाथ उठा दिया।
लो, घास की सुर्खरु पत्ती भी खड़ी हो गई–
बड़ी अदा से।
उसकी कौन न सुनेगा?
लो अब गिन लो हाथ–
और चाहोगे प्रमाण?
बस, अब तो?
हो गया न सिद्ध–
सूरज बदमाश है–
कितना अन्यायी –
बेचारे अँधेरे को तबाह कर दिया!" [3]

'अभियोग–पत्र' कविता में आततायी सत्ता के नाम सभी ने मिलकर अभियोग–पत्र लिखा है। आज की राजनैतिक व्यवस्था को करारी चोट दी है–

"हर सवेरे आश्वस्त,
वचन–भंग से संत्रस्त,
गुलेल– आहत चिड़िया सी–
लहूलुहान,

---

1 'आँधी और चाँदनी' 'पहले इनकी सुन लो', पृष्ठ 34–35
2 वही, 'दलबदलू', पृष्ठ 19
3 वही, 'डेमोक्रेसी', पृष्ठ 21–22

जाग उठ्ठी फण–उठाई जनता का–
आततायी सत्ता के नाम
तुरन्त जवाबदेही के लिए
डंको से लिखा
खुला, हस्ताक्षरित
अभियोग–पत्र।" [1]

इसी तरह 'हम शिल्पी संत्रास के' की एक अन्य कविता 'यस सर' में आकाश और सागर के माध्यम से शासन–तन्त्र की कार्य–प्रणाली पर एक अत्यन्त तीखा व्यंग्य किया गया है। निचले ओहदे के ज्ञानी अधिकारियो को सत्ताधारी नेताओं के सामने झुकना पडता है–

"ज्ञान के चमकते मोतियों ,
घोघे– सीपियों का यह तरंगाकुल समुन्दर
गहरे आन्तरिक उल्लास में भर कर,
अपने बास–
खोखले, जडाऊ आसमान के चरणों में
लहरता – पसरता – हहरता
धीर–गम्भीर संयत स्वर में
अदब के साथ
मुंडी हिला– हिला कर
कह रहा है–
यस सर! यस सर ...." [2]

'रेल की खिडकी से' शीर्षक कविता में कवि ने जनतान्त्रिक मूल्यों के अवमूल्यन तथा विडम्बना पर करारा व्यंग्य किया है कि हमारे देश मे गद्दीदार रोलिंग जनकुर्सी पर अनजाने मे ही एक अदद राजनैतिक लोथ, आमलेट की तरह जनता के सामने परोस दी जाती है–

"जैसे–एक अदद राजनीतिक लोथ
उसके अनजाने में ही
नितम्बपूर्वक कहीं से समूल उठाई जा कर
किसी गद्दीदार रौलिंग जन–कुर्सी पर
कहीं भी
परस दी जाती है, आमलेट की तरह, जनता को!–
जनता का भाग्य खिल उठता है
जेठ में इतराते लाल–सिन्दुरी गुलमुहर की तरह!
लोथ– बिना किसी उज्र के
सहज ही अन्यत्र, सरका दी जाने के लिए–

---

1 'हम शिल्पी संत्रास के' 'अभियोग–पत्र', पृष्ठ 35
2 वही, 'यस सर', पृष्ठ 20

यथावसर, ससम्मान, शान्तिपूर्वक,

सस्नेह, नीरव!" [1]

देश मे एक बार कुर्सी मिल जाने पर उसे कुर्सीधर छोड़ता ही नही। 'कुर्सी' शीर्षक कविता का यह व्यंग्यात्मक स्वर सत्ता के भूखे राजनीतिज्ञों की पोल खोल कर रख देता है–

"हँस – रो री कुर्सी,
काली – गोरी कुर्सी,
सीना जोरी कुर्सी
योगिनी कुर्सी, भोगिनी कुर्सी!" [2]

वह अकेले ही सत्ता मे फैली कुव्यवस्था को दूर करने के लिए तत्पर है–

काले–पीले अंधड़ों में छोड़ दो–
बिलकुल अकेला!"
जीर्ण संसार के ध्वंस को बस अब आवश्यक,
प्रचण्ड शक्तियों के महा आगमन के देखने, मन के पैदें तक महसूसने!
देखूँ – रुद्र शिव–सौन्दर्य–
चौड़ी खुली आँखों में लिए– युगान्तर का सुख, हर्ष, आश्चर्य।" [3]

'हथौडा चाहिये तोडो चट्टान को' शीर्षक कविता मे भी वर्तमान व्यवस्था के प्रति कवि का आक्रोश व्यजित हुआ है। इस व्यवस्था की जड–चट्टान को तोडने के लिए इसे डायनामाइट से काट कर उडाना पडेगा क्योंकि यह चीन की दीवार–सी मोटी और लम्बी है जिसे क्रान्ति की बरछी–सी तेज गरम किरणो से गलाकर ही काटा जा सकता है–

"पर, अब काटनी तो होगी ही
चीन की दीवार–सी मोटी वह लम्बी जड़ बरफ!
बिलो नॉर्मल है तापमान मानव–चेतना का चौतरफ़!
भारी जड़ चट्टान को डायनामाइट से काट उड़ाना है
लाख–लाख हॉर्स पावर का ट्रेक्टर चलाना है।

x x x x x x x

हो चुकी है सौ सुनार की
अब तो होगी एक लुहार की
लोहे का एक भारी हथौड़ा
बस अब हाथ में आना है।" [4]

'गोकुल की पकौडियॉ' शीर्षक कविता मे कवि ने देश के इस कटु यथार्थ को चित्रित किया है कि किसी मेहनतकश का श्रम और प्रतिभा से अर्जित किया प्रजातान्त्रिक भोग्य ऊपर ही किसी पी० आई० पी० अथवा उसके किसी चहेते के लिए फोन, चाय, लंच या डिनर पर हुई चिकनी गुफ्तगू के द्वारा जादुई गति से अदृश्य रूप से उड जाता है–

---

1 हम शिल्पी सत्रास के 'रेल की खिडकी से', पृष्ठ 42
2 वही, 'कुर्सी', पृष्ठ 46
3 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'अन्धडो मे छोड दो–अकेला', पृष्ठ 75
4 वही, 'हथौडा चाहिये तोडो चट्टान को', पृष्ठ 73–74

"चीलें आकाश में आ–आ कर
मँडराने लगती थी प्रतीक्षा में नित प्रातः टाइम–सर!
झपट्टा मार–मार, धरती पर गिरने से पहले ही–
पकौड़ियाँ उड़ा ले जाती थीं– सर्र, सर्र .....
जैसे, अचानक –
मेरा, आपका, किसी प्रतिभाशाली मेहनतकश का
श्रम और प्रतिभा से सुअर्जित
प्रजातान्त्रिक भोग्य–
ऊपर का ऊपर ही, अदृश्य जादूई गति से
फोन, चाय, लंच या डिनर पर हुई चिकनी गुफ़्तगू के तहत
उड़ जाता है–
किसी वी0 आई0 पी0 या उसके चहेते से–
– परम सुयोग्य!" [1]

सन् 1975 ई0 में राष्ट्र मे आपात–कालीन स्थिति लागू करके सभी नागरिकों के अधिकारों को निरस्त कर दिया गया था तो उस समय जनता की आवाज पर किस प्रकार ताले लग चुके थे– इसकी विस्तृत जानकारी 'तरुण' की 'लिरिक नहीं, एक चीख गीत' शीर्षक लम्बी और तल्ख–तीखी कविता में मिलती है–

"मेरी साँसों में, गीले थूहरों की बाड़ में लगाई गयी–
आग का दमघोट धुआँ यों भर दिया गया–
जैसे भीमकाय ट्रक के टायर में
पेट्रोल पंप की फ्री मशीनी हवा बर्स्ट होने के बिन्दु तक।" [2]

'भली–भाँति जानता हूँ' कविता मे अभिव्यक्ति के खतरो के प्रति कवि की सजगता का आभास मिलता है कि प्रजातन्त्र और वाणी स्वातन्त्र्य के इस युग में भी उसकी बात भून दी जायेगी, उसी आवाज का कबाब बना दिया जायेगा। इतना ही नही, उठते हुए हाथो के जगल में आततायी की ओर उठी उसकी उँगली खडाक् से बंदूक की नाल से उडा दी जायेगी और जनता की छाती पर कुतुबमीनार–से खडे, सावन–भादो की बिजलियो तक को डकार जाने वाले भूकम्प–प्रुफ, खानदानी, नकद देश–सेवक उस पर अरडाकर झपटते हुए टूट पडेगे कि यह 'आउटसाइडर' कौन उनके बाडे मे आ गया है? कहाँ से आ गया है?–

"यह कौन आया है 'आउटसाइडर' – हमारे बाड़े में!'
मेड़िया घसानी – टुकुर–टुकुर देखता ही रहूँगा मैं–
काली–पीली आँधी और वर्षा में जैसे डाल–लुका पंछी!–
मैं बचा रह जाऊँगा अकेला–
छाती से चिपकाये –
अपनी प्यारी घृणा, झुँझलाहट, असफलता,
और मनुष्यता के शत्रुओं के प्रति

---
1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'गोकुल की पकौडियाँ', पृष्ठ 45
2 वही, 'लिरिक नही, एक चीख गीत', पृष्ठ 72

अपनी नपुंसक गुर्राहट!" [1]

'चाबुक दे दो' नामक कविता मे शिष्ट एव सुसस्कृत कहीं जाने वाली सफेदपोश सभ्यता के प्रति कवि का क्षोभ व्यंजित हुआ है। देश की भोली–भाली जनता के साथ निरन्तर कुचक्रणाओं का खेल खेलने वाली प्रजातन्त्री चिकनपोश सभ्यता को चाबुक से सडासड सूड, उसकी चमडी उधेड, लहूलोहान कर लेने पर ही कवि शान्त हो सकेगा। किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप को अब वह सहन नही कर सकता क्योकि जन–साधारण के विरुद्ध कोई भी षडयन्त्र 'तरुण' के हृदय को ठेठ तक बेध जाता है–

"भादों की स्याह रातों वाली
घुँघराली, लचीली, लहरदार,
कड़कड़ाती, बिजलियों के चाबुक मेरे हाथ में दे दो।
फुंकराते कोयले–सी, साँपों के नील–लोहित
जहर की झीलों में उन्हें बुझाकर,
हिमालय की चोटियों पर खड़ा होकर
शिष्ट, सौम्य व सफेदपोश सभ्यता को
मैं सड़ासड़ सूड़ दूँ!
चमड़ी उधेड़कर –
मैं उसे लहूलोहान कर दूँ!
उसके रक्त के कण–कण में कुचक्रणा है!
x x x x x x
बेचारे भोले आदमी के साथ
प्रजातन्त्री चिकनपोश सभ्यता का–
यह खेल! यह खेल!" [2]

'खून–सना वट–बीज' नामक कविता मे सडक पर रहने वाले दीन–हीन रिक्शा चलाने वाले के अन्तर्मन मे अकुरित हो रहे खूनी क्रान्ति के बीज का निदर्शन हुआ है। शोषित–दलित–वर्ग द्वारा भावी क्रान्ति को कवि स्पष्ट देख रहा है–

"सावधान गिरेगी गाज!
भवन गिरेगें– धड़ाम–धड़ाम!
चारों ओर होगी – 'हाय–राम'!
लगती थी मुझे रिक्शा वाले की पसीना–सनी कमीज–
जैसे, भावी काले–मटियाले तूफ़ान का हो एक खून–सना वट–बीज।" [3]

स्वाधीनता के पश्चात् विभिन्न क्षेत्रो में हुए मोह–भग और उसके परिणामस्वरूप देश के जन–मानस मे अपनी व्यथा–पीडा और आक्रोश से भी 'तरुण' के गहरे सरोकार रहे है जो देश के प्रति कवि की सच्ची रागात्मकता को रेखांकित करते है।

'तरुण' का राजनीतिक चिन्तन किसी पूर्वाग्रही हठधार्मिता का संकेत न होकर उनकी समग्र राष्ट्रीय उद्भावनाओं के प्रतिमानो को व्यक्त करने वाला है। किसी राजनैतिक दल के प्रति उनका कोई संकीर्ण मोह नही है। उन्होने राजनैतिक परिकल्पना मे एक उदारवादी राष्ट्र की परिकल्पना की है जहॉ मानव–समाज के समानाधिकार का उद्घोष व्यंजित हुआ है।

---

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'भली भॉति जानता हूँ', पृष्ठ 72
2 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'चाबुक दे दो', पृष्ठ 395
3 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' खून–सना वट–बीज', पृष्ठ 27

सामाजिक अवधारणा

समाज का सजग नेत्रो से निरीक्षण करने वाला कुशल चितेरा साहित्यकार सामाजिक प्राणी होने के नाते एक स्तर पर समाज से प्रभावित होता है तो युग द्रुष्टा, युग–निर्माता होने के कारण दूसरे स्तर पर उसे प्रभावित कर एक नया रूप भी देता है। वस्तुतः साहित्य सजावट की वस्तु नही, बल्कि उगाने की वस्तु है। समाज से सिक्त साहित्य इसी भावभूमि पर अपनी आधारशिला रखता है और अपनी विशिष्ट आभा के साथ साहित्य–क्षितिज पर प्रदीप्त होता है–

"जब संसार व्यथाओं वाला–
हो जाए काजल सा काला–
चन्द्रकिरण बन आलोकित कर देना शून्य हृदय का कोना!
मेरे गीत मौन मत होना ?" [1]

'तरुण' की रचनाओ में जीवन और जगत का यथार्थ चित्रण, समसामयिक समाज से सम्पृक्त होने का भाव, जन कल्याण की उत्कृष्ट भावना, नागरिको को उनके दायित्वो के प्रति सजग रहने की चेष्टा, धर्म के बाह्याडम्बरों का विरोध, अतीत का गौरव गान, दयनीय वर्तमान के प्रति असन्तोष, शोषण का विरोध, देश की समस्याओ के प्रति सजग, दृष्टि, नारी की दयनीय स्थिति के प्रति आक्रोश और अन्धविश्वासी, जर्जर रूढ़ियो, जाति–व्यवस्था पर तीव्र प्रहार आदि भावनाओं का नवोन्मीलन होता है। समाज से सम्पृक्त होकर रचनाकार अपने युग के यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति देता है–

"कीड़ों से खाये जाते, वासना लोलुप, रक्त टपकाते–
हड़के कुत्तों के
जबड़ों में पहुँच गया है रे– अब यह मेरा देश
यहाँ से वहाँ!" [2]

यह स्थिति है हमारे देश की, और धुँआ, कॉटे, बुलेट, चीख, डंक, स्फोट, खाज, धॉय–धॉय, रक्तोष्ण पानी से त्रस्त नगर पर दृष्टि डालता कवि नगरो के यथार्थ को रेखांकित करता हुआ कहता है–

"बिछी है बारुद की सुरंगे– धमाकों को छाती से चिपकाये।
पग–पग पर कँटीले–ज़हरीले थूहर ही थूहर हैं।
नागफनी की बाड़ें लगी हैं,
काँटे तने खड़े हैं पगतलियों से लगाकर आँख की पुतलियों तक।
तेजाब से लगी आग में, धुँए में–
फण–पटकते साँप, डंक–उठाये काले रेगिस्तानी बिच्छु और छिपकलियाँ।
अजगरों के साँस–सी हवाओं में सड़ी अफीम का सत व्याप्त है।
काँच का बुरादा घुला–मिला है रक्तोष्ण पानी की
एक–एक बूंद में।
कान में आती रहती हैं, दूध–पीते बच्चों की करुण चिल्लाहटें–
किवाड़ों के बीच उनकी उँगलियों के चिंथ जाने के समय की–सी।" [3]

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'मेरे गीत मौन मत होना', पृष्ठ 139
2 वही, 'नव मानव', पृष्ठ 55
3 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' हम ऐसे नगर के निवासी', पृष्ठ 21–22

युगगत स्पन्दनो का प्रभाव 'तरुण' के काव्यगत 'समाज' के किस प्रकार प्रभावित करता है इसे उनके कविता–सग्रह–'प्रथम किरण', 'हिमांचला', 'ऑधी और चॉदनी' तथा 'हम शिल्पी संत्रास के' के माध्यम से स्पष्ट समझा जा सकता है। 'प्रथम किरण' और 'हिमांचला' में जो सामाजिक चेतना ग्राम–परिवेश, ग्राम्य जीवन, लोक परिवेश, लोक–सस्कृति और राष्ट्र–प्रेम तथा अतीत के गौरव को चित्रित करती है, वहीं सामाजिक चेतना 'ऑधी और चॉदनी', तथा 'हम शिल्पी सत्रास के' में बदलते हुए युग परिवेश के कारण एकदम भिन्न दिखाई देती है–

"क्रान्ति की प्रचण्ड ठोकर से
तोड़ दो व्यवस्था के इस बर्फ की जड़ चट्टान को–
जिसमें कि मनुष्यता का
सनातन स्वर चिर बंदी पड़ा है– लुंठित!" [1]

आधुनिक युग की विकट समस्या है शोषण। कदम–कदम पर हो रहे शोषण से सामान्य मानव त्रस्त है। 'तरुण' की चेतना शोषण के विरुद्ध उसमे आक्रोश की जन्म देती है। फलत वह अपनी आकाक्षा को प्रस्तुत करता हुआ कहता है–

"न चाहिये शरबत, टोस्ट, मक्खन, अंगूर, आड़ू
कबीर की सखियाँ गाऊँ, मारूँ दुनिया के मुँह पर झाड़ू,
कोई तीस मार खाँ समझे अपने को तो पछाड़ूँ।
खाऊँ मेहनत–पसीने की अपनी दाल–रोटी,
पर–पीड़क, अन्यायी–आततायी की काटूँ बोटी–बोटी।" [2]

समाज के सभी व्यक्तियों की प्रवृति, स्वभाव, आदत, व्यवहार आदि में समानता नही होती। शोषण–उत्पीड़न, दमन–चक्र से पिसते हुए समाज का अभिन्न अग होने के कारण कवि के अन्तस् मे क्रान्तिकारी सामाजिक चेतना का जन्म होता है। व्यक्ति, समूह या समाज को स्पष्ट आभास होने लगता है कि अब समय वृक्ष की डाली काटने का नही, अपितु वृक्ष को जड से उखाड फेकने का है जिसके बिना दुषित वातावरण का निदान सम्भव नही–

"सृष्टि जड़ पड़ी है!
उठने दो काली–पीली आँधियाँ,
गिरने दो गाज और ढहने दो शिखर,
सजे हुए मंचों के नेपथ्यों को फोड़ दो,
उनका शासन असह्य हो उठा है!
मचने दो क्रान्तियाँ!
भूचाल लाओ, ठोकरें मारो,
अन्याय के विरुद्ध आवाजें लगाओं,
आकाश में दरारें डाल दो,
आज ध्वंस के लिए मेरी पूरी स्वीकृति है!" [3]

समाज व्यक्ति को परिस्थितियों के अनुरूप स्वय को ढालने व समाज की मान्यताओ को मानने की ओर अग्रसर करता है। प्राणियो मे प्रेम, दया और सहानुभूति आदि मानवोचित गुणो की संचारक चेतना रक्तहीन, क्षमाशील एवं दयामयी होती है। 'प्रथम

---
1 'ऑधी और चॉदनी' 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 27
2 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'अपनी ही मस्ती', पृष्ठ 85
3 'ऑधी और चॉदनी' 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 27–28

किरण'– कविता–सग्रह की 'दो चिडियॉ' शीर्षक कविता में कवि प्रेमातुर चिडियों से कहता है कि तुम हिसायुक्त ससार मे जाकर प्रेम का सदेश दो–

"हिंसक जग में जाकर तुम
यह प्रेम दिखाओ, पंछी!
स्वर्गीय प्रेम का मृजुल
संदेश सुनाओं पंछी!" [1]

'राष्ट्रगीत' मे मानवोचित गुणो के संचरण के लिए 'तरुण' अपने देश के अतीत का ज्ञान देते हुए, 'सुख से जीओ और जीने दो' का संदेश प्रसारित करता है–

"साक्षी है इतिहास सदा ही हमने सबको गले लगाया,
कर सब की कल्याण–कामना, विश्व–प्रेम हमने दर्शाया,
गूँज रहा है बुद्धदेव का अजर– अमर संदेश हमारा।
महिमामय है देश हमारा।" [2]

अपने देश के अतीत की मनोहर झॉकियो को प्रस्तुत करते कवि को सिर्फ अपने देश से ही प्यार नहीं है बल्कि सम्पूर्ण विश्व उसे अपना लगता हे। तभी तो वह सिर्फ विश्व–शान्ति की कामना करता है–

"हम सब मिलकर मधुर प्रेम–बाँसुरी बजायेगें।
इस धरती पर विश्वशान्ति के बादल छायेंगे।" [3]

'तरुण' समाज में रहने वाले व्यक्तियो को ईश्वर, धर्म, बाह्यडम्बरों एव कर्म काण्डो का विरोध करने का आह्वान करते है। अलौकिक सत्ता को अस्वीकार कर मानववाद की चेतना को प्रज्ज्वलित करने की राय देते हैं–

"मत करो व्यर्थ गुण–गान स्वर्ग के देवों का,
उस कामधेनु का, कल्पवृक्ष के मेघों का,
मत व्यर्थ विलासी देवों के गुण गा–गाकर–
तुम मान घटाओं, मानव! मानव–जीवन का;
होंगे तो होंगे देव अतुल धन–बल सागर,
पर मानव अपनी दुर्बलता में भी सुन्दर!" [4]

अलौकिक सत्ता को नकारते हुए कवि एक ओर शून्यवादी समाज से परिपूर्ण होने का परिचय देता है तो दूसरी ओर मानववाद की प्रतिष्ठा भी चाहता है। 'मानव–जग मे सबसे ऊँचा आसन मानव का होता है, इसलिए तू सुख की इच्छा छोडकर मानव बन' का सन्देश देकर मानववाद का आकाक्षी बन जाता है। मानववाद की प्रतिष्ठा के लिए ही वह ईश्वर की चुनौती स्वीकार लेता है–

"सोचा–बहुत रही ईश्वर की बपौती,
स्वीकार है अब हमको चुनौती,
विराट रत्नगर्भा वसुन्धरा पर बुद्धिसम्मत–
आदमी खोकर रहे अपनी पत!

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'दो चिडियॉ', पृष्ठ 99
2 'प्रथम किरण' राष्ट्र गीत', पृष्ठ 2
3 तरुण–काव्य ग्रन्थावली' नया सकल्प जनगीत', पृष्ठ 401
4 'हिमाचला' 'नया जीवन–नया समाज', पृष्ठ 17

मानव के गौरव का सवाल है, निपटारा हो न्याय संगत!" [1]

राजनैतिक चेतना, विधि चेतना, नैतिकता, कला, धर्म और दर्शन समाज के विभिन्न रूप है जिनके माध्यम से सामाजिक चेतना अभिव्यक्त होती है। समाज शरीर है तो समाज के विभिन्न रूप उस शरीर का एक–एक अवयव। यह रूप सामाजिक विकास में सक्रिय योगदान देते हैं। डॉ0 शिव कुमार मिश्र के अनुसार– ***"कवि रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण' का रचना–संसार एक ऐसा ही रचना–संसार है जो किसी समय का हमारा जाना–बूझा और पहचाना हुआ है और जिसे रचने और सिरजने में कवि के अपने जीवन के कई दशक खप चुके हैं। इन सारे दशकों में कवि धीरज और आस्था के साथ मंजिल–दर–मंजल संवदेनाओं और उसकी जमीन पर आगे बढ़ता रहा है, वो उसकी जानी–पहचानी है।"*** [7]

उनकी अधिकांश रचनाएँ जीवन–बोध की सुगन्ध से अनुपूरित है। इन रचनाओं में अपने युग की सांस्कृतिक पीड़ा और लोक–संस्कृति के संस्पर्श–की गहनता की सशक्त अभिव्यक्ति है जिनमें आधुनिकता, सामाजिक–प्रतिबद्धता और प्रासंगिकता की मात्रा कम नहीं है। राष्ट्र–कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने कवि और उसके रचना–संसार के सन्दर्भ में लिखा है– ***"इस देश की जलवायु, उसका इतिहास, उसकी पूजा और वन्दना से रामेश्वर का हृदय भरा हुआ है।"*** [8] प्रकृति, प्रेम एवम् क्रान्ति की त्रिधारा ने 'तरुण' की रचनाओ मे सामाजिक अवधारणा को पुष्ट किया है।

'तरुण' के प्रथम कविता संग्रह 'प्रथम किरण' की रचनाओ मे प्रेम, प्रकृति, मानवता, राष्ट्रीय भावना, भक्ति, आध्यात्म और रहस्य–भावना की सतरंगी धारा विद्यमान है। कवि की काव्य चेतना को ग्राम–जीवन विशेषकर राजस्थानी गॉवों की ऊबड–खाबड़ प्रकृति और श्रम से जीवन–यापन करते, ग्रामीणों ने झकझोर कर समाज की पगडंडियों पर केन्द्रित किया है। जीवन को जीने योग्य बनाने वाले उच्चादर्शों को रेखांकित कर मानवता का सन्देश देते हुए कवि ने 'वन्दना' शीर्षक कविता, में अपने युग को स्वस्थ दिशा देने का उत्कृष्ट प्रयास किया है। नवीन युग के आलोक एवम् नव जीवन प्रभात् से मंडित संग्रह की रचनाओं में नवीन सृजन के प्रति कवि उत्साही है–

"जीर्ण पत्र सब झड़ें हृदय के
कटें विकट माया के बन्धन,
नयी कल्पना, नए भाव के
रूप–रंग से स्वस्थ रहे मन!" [2]

अपनी राष्ट्रीय परम्परा के प्रति– 'तरुण' का गर्व स्वाभाविक है। इस संग्रह की प्रथम रचना 'राष्ट्रगीत' राष्ट्रीय भावनाओ के स्पन्दन से ओतप्रोत है जिसमें देश की संस्कृति, प्रकृति का सौन्दर्य, ज्ञान तथा विज्ञान के सांस्कृतिक विकास में भारत के योगदान को कवि ने गहरी रेखाओं में रूपायित किया है। 'प्रकृति की गोद में' शीर्षक कविता में गंगातट पर होते अन्याय, शोषण और उनकी निम्न दशा को कवि ने भास्वर रेखाओं में उभारा है–

"उस अर्धनग्न कंकाल–गात्र के दृग में
मैंने देखा युग–युग का दुखमय लेखा!" [3]

'हिमांचला' संग्रह की अधिकांश रचनाएँ गीत शैली मे है जिन की मुखरता एव सवेदनशीलता 'प्रथम किरण' की तुलना में अधिक है। जीवन के प्रति यथार्थ चेतना से युक्त इस संग्रह के माध्यम से कवि ने जीवन को सुदृढ़ मानवीय धरातल पर स्थापित

---

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'मैं झगड आया', पृष्ठ 122.
2 'प्रथम किरण' 'वन्दना', पृष्ठ 3
3 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रकृति की गोद में', पृष्ठ 173

करने का प्रयास किया है। जीवन–संघर्ष का यथार्थ–चित्रण, मुक्त होने की आकांक्षा, नव–युग की भावनाओं का स्पन्दन, नवभाव–बोध की गरिमा, क्रान्ति का ओजस्वी नाद और प्रगतिशील समाज से आलोकित 'हिमांचला' में कवि ने प्रकृति और जीवन को एक साथ चित्रित किया है। 'प्रकृति : जीवन का आधार' जैसे अनेक गीत इसके साक्षी है–

"यदि धरती पर रंग–बिरंगे ये मुसकाते फूल न होते,
हरियाली से लदे चमकती सरिताओं के फूल न होते!
चाँद–सितारों वाला नीला मुक्त महा आकाश न होता,
मधुर पवन के मन्द झँकोरे सुखदायी अनुकूल न होते–
तो हम मृग–से भोले मानव, ले अपने व्याकुल मन रीते–
घोर मरुस्थल से तो इस जग में एक घड़ी भी कैसे जीते!" [1]

मानव की पीडा, अभाव और समाज की समस्याओं को मुखरित करते हुए 'तरुण' ने 'माटी के घर' शीर्षक कविता में भारतीय ग्राम का हृदयग्राही अकन किया है, जिसमे ग्रामवासियों के अभावग्रस्त, क्षुधित जीवन का यथार्थ अकन भी है–

"युग–युग से शोषित ये गाँवों के नारी–नर,
हैं अर्ध–नग्न, चिरमूढ़, क्षुधित, ऋण से जर्जर!
ये जीवन के हित केवल ईश्वर पर निर्भर,
नीचे इसके धरती, ऊपर सूना अम्बर!" [2]

'माटी के घर', 'ग्राम–वधू' और ग्राम विरहिणी दीप जलाती' जैसी रचनाओ से ग्रामीण संस्कृति साकार हो उठती है। 'पछी', पिंजरे के तोड द्वार' कविता मे कवि ने ससार और समाज के बन्धनों को तोडकर स्वाधीनता का यशोगान किया है जिसमें बंदी जीवन के प्रति विद्रोह देखते ही बनता है–

"पंछी! पिंजरे के तोड़ द्वार!
तेरी पाँखों में नूतन बल,
कहां में उबला गीत तरल,
तू कैसे हाय हुआ बन्दी, वन–वन के कोमल कलाकार।" [3]

स्वाधीनता चेतना से आलोकित कवि ने 'बटोही, ठण्डी सॉस न ले,' 'मॉझी, साहस छोड़ न देना,' 'आश्वासन,' 'संघर्ष कर आहें न भर,' 'नया जीवन : नया समाज,' 'निर्माण' आदि रचनाओं में संघर्ष–प्रेरणा देकर कर्म करने का संदेश दिया है– 'मत करो व्यर्थ गुणगान स्वर्ग के देवो का' जैसी पंक्तियॉ कवि की शून्यवादी समाज की परिणति है जिसके कारण कवि मानववाद का पोषक बन जाता है–

"मन में आशा, तन में पौरुष का वास रहे,
मानव का मानव–गौरव में विश्वास रहे।" [4]

शोषित और उत्पीडितों के प्रति सहानुभूति–प्रदर्शन के साथ ही कवि ने क्रान्ति के स्वर भी गुजायित किए हैं–

"क्रान्ति के खेलूँ सुन्दर खेल,
शान्ति, वर्षा हिम, पाला झेल,

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रकृति जीवन का आधार', पृष्ठ 169
2 'हिमाचला' 'माटी के घर', पृष्ठ 89
3 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'पछी, पिजरे के तोड द्वार', पृष्ठ 81
4 'हिमाचला' 'नया जीवन नया समाज', पृष्ठ 17

पर्व है नव यौवन का आज, खेल लूँ मैं भी अपनी फाग।
जाग, मेरे जीवन की आग।" [1]

प्रगतिशीलता के रक्त से सरोबार 'हिमांचला' के हृदय मे समाज की धड़कनों की तीव्रता स्पष्ट अनुभव की जा सकती है।

'ऑधी और चॉदनी' आधुनिक जीवन–बोध से सम्पन्न एवं समृद्ध कविता–सग्रह हैं, जिसमें कवि की अपनी पीड़ा के साथ ही युग की वेदना और संघर्ष को विशाल फलक प्राप्त हुआ है। यहॉ सिर्फ एक कवि अथवा एक वर्ग के हृदय का स्पंदन नहीं है अपितु सम्पूर्ण विश्व ही बोलता प्रतीत होता है। बदले हुए युग–सन्दर्भो के प्रति कवि ने विशेष सजगता दिखलाते हुए अपनी काव्य–चेतना को युगीन–परिवर्तनो के साथ–साथ निरन्तर विकसित किया है। समाज के मध्य रहते हुए, आघात–प्रतिघात सहते हुए, जीवन का विष और अमृत पीते हुए 'तरुण' ने जो कुछ भोगा है उसकी अभिव्यक्ति ही 'ऑधी और चॉदनी' के केन्द्र में है। युग की विडम्बना, विकृतियॉ, विभीषिकाएँ और उनसे प्राप्त होने वाली पीडा, असन्तोष, संत्रास और आक्रोश की अभिव्यक्ति से आक्रान्त हैं उक्त संग्रह की कविताएँ।

समाज के कटु यथार्थ से ग्रस्त और क्षुब्ध होकर जिस प्रकार गजानन माधव 'मुक्तिबोध' ने अपनी रचनाओं में उसके प्रति अपने अंतस के आक्रोश की सार्थक अभिव्यक्ति की है, समसामयिकता और बौद्धिकता की वैसी ही अभिव्यक्ति 'तरुण' की 'ऑधी और चॉदनी' में है। निम्न पंक्तियॉ इसी तथ्य को प्रदर्शित करती है–

"हम जीवितों की तरह कभी जिए ही नहीं,
हमें बलात् जिलाया गया!
बात हमारे गले कुछ उतरी ही नहीं,
बाँस की नली से, जबरदस्ती,
हमें सब कुछ बना–बनाया पिलाया गया!
मोती की आब–से हम कभी अपनी हँसी हँसे ही नहीं,
हमें गुदगुदी करके हँसाया गया!" [2]

'अॅधेरा', 'हम जीते तो हैं', 'आदमी', 'आदमी?', 'नाखून– भॉंत–भॉत के', 'मानव', 'नवमानव', 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', आदि अनेकानेक रचनाएँ आधुनिक जीवनबोध से अनुरंजित हैं। मानव की जिन्दगी पर कवि की बेबाक टिप्पणी है–

"हो गई है जिन्दगी अब बर्फ की चट्टान–
हाय दबकर रह गया इसमें मनुज का गान।
बर्फ की कैसी लहर आई इधर बेरोक–
मनुज की सब चेतना जम हो गई हिम–लोक।" [3]

मानव–समाज के बाह्य और आन्तरिक विकास का लेखा–जोखा होने के कारण साहित्य समाज की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, साथ ही समाज के समक्ष उत्पन्न होने वाली समस्याओ के निराकरण के लिए मार्गदर्शक भी। वह अपनी समग्र चेतना के साथ हृदय तथा भावनाओं का परिष्कार कर निर्माण का सन्देश देता है। 'हिमांचला' संग्रह की 'निर्माण' कविता ऐसा ही सन्देश देती है।

"अपने घरौंदे तू बना।
तट है बड़ा, रेता घना!
संसार भी तो देख ले–

---

1 'हिमाचला' 'जाग, मेरे जीवन की आग', पृष्ठ 36
2 'ऑधी और चॉदनी' 'आत्मकथा', पृष्ठ 53
3 वही, 'बर्फ की चट्टान', पृष्ठ 69

रमणीय तेरी कल्पना! [1]

नव–निर्माण का उद्घोष करते 'तरुण' को पूर्णतः ज्ञात है कि प्राचीन जर्जर मान्यताऍ, परम्पराऍ मानव के शोषण के लिए उत्तरदायी है। अत वह उन जर्जर मान्यताओं को समूल नष्ट कर देने का आकांक्षी बन जाता है–

"फूटने दो नये रक्ताभ पल्लव!
पृथ्वी पर उतारो, रे–
अब नया मानव!" [2]

समाज के प्रतीक जब अपनी जीवन्तता खो देते है अर्थात् रूढ या मृत हो जाते हैं तो सामाजिक रूढ़ियो और सामाजिक विश्वासो आदि के रूप मे शेष रह जाते है। डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल 'तरुण' के काव्य में मिथक आधुनिक बोध से सम्पृक्त है–

"मुक्त करे भोले व्यक्ति को, मुक्त करे जो पीड़ित समाज,
तोड़े, भेदे आज के चक्रव्यूह को जो जॉं–बाज़ –
मैं तो उसी को कहूँगा ताजा अभिमन्यु आज!" [3]

सामाजिक अवधारणा से अनुप्राणित यथार्थ के प्रति आग्रही रचनाकार न सिर्फ अपने युग के यथार्थ को अभिव्यक्ति देता है अपितु मनोवैज्ञानिक बिन्दुओ को भी भास्वर रेखाओ मे उभारता है। भारतवर्ष अनेक धर्म, जाति, वर्ण और वर्गों में विभक्त है। इसके अनुरूप ही उसके समाज के मानदण्ड होते है। साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी है। गॉव की धरती से जुडे साहित्यकार की रचनाओ मे ग्राम्य–जीवन,ग्राम्य–सस्कृति, लोक–परिवेश और लोक–सस्कृति की सुगन्ध समाहित रहती है। ग्राम्य–वासियो के अभावग्रस्त जीवन के यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति देते हुए कवि कहता है–

"है कितनी करुणा यहाँ, और कितनी ममता!
क्या इसीलिए है यहाँ अविद्या, निर्धनता ?
ये ग्राम–स्वर्ग के हाय, अस्थि–पंजर भू पर,
लायेगा जीवन–रक्त कौन, है किसे पता!" [4]

भारतीय किसान, उसका घर, उसका परिवेश और समस्याओ का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने वाला कवि जब किसान की पत्नी की हालत का अवलोकन करता है तो उसकी लेखनी यह लिखने को विवश हो जाता है–

"उदर–पूर्ति हित, ऋण में घर का
हाय बिक गया केश–केश है!
तन ढ़कने को वस्त्र न पूरा
इस सीता के पास शेष है।" [5]

गॉव की धरती पर जन्मा, पला, बढ़ा यही कवि शहरी सभ्यता की भूमि पर पदार्पण कर आधुनिक युग की यान्त्रिकता, औधोगिकरण, हृदय की संकीर्णता, भौतिक समृद्धि, कृत्रिमता और मूल्यो के विघटन को अपना प्रतिपाद्य बनाता है। अपने युग के आदमी पर बेबाक टिप्पणी करते हुए कवि कहता है–

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' · 'निर्माण', पृष्ठ 95
2 'ऑंधी और चॉंदनी' 'नव मानव', पृष्ठ 56
3 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'एक ताजा अभिमन्यु', पृष्ठ 71
4 'हिमाचला' 'माटी के घर', पृष्ठ 89
5 वही, 'खेत की ओर', पृष्ठ 80

"जिसमें सब भक्ष्य, अभक्ष्य, घूस, साम्राज्य
सब चुपचाप समा जायँ
और डकार न आये! ऐसा है यह आदमी।" [1]

'तरुण' के अनुसार आज के आदमी का अस्तित्व कबाडखाने के लौह–लक्कड के अतिरिक्त कुछ नही है। उसकी स्थिति धरती के बेस्ट पेपर बास्केट मे साहब के द्वारा रिजेक्टेड, फाडकर फेक दिए गए रद्दी के टुकडे के समान है–

"कबाड़खाने का लौह–लक्कड़ ?
जो ऊपर से फैंक दिया गया – रिजेक्टेड,
धरती की वेस्ट–पेपर बास्केट में–
साहब के द्वारा फाड़–फेंक दिए गये
रद्दी के टुकड़े–सा ?" [2]

'हम शिल्पी संत्रास के' में इस आदमी का रक्त जो कभी अनार के ताजा फल बसन्त या जेठ की ऊषा या सन्ध्या, पलाश की दहकती सौन्दर्यमयी ज्वाला सा एकदम लाल होता था और किसी अन्यायपूर्ण बात पर या स्वाभिमान पर हुए आघात पर उबाल खा जाया करता था, वह रक्त अब लाल नहीं रहा। वह प्रदूषित हो गया है, तमाम विकृतियॉ उत्पन्न हो गई है उसमें। परिणामतः–

"सुबह–पीला
दोपहर – नीला
शाम को – लाल
और रात को श्याम,
– गिरिगिटिया हो गया है अब तो आदमी तमाम।" [3]

समाज और यथार्थ का सम्बन्ध उतना ही घनिष्ठ है जितना कि भाषा और शब्द का, लेखनी और स्याही का। 'तरुण' की रचनाओं में यथार्थ की जड़े बहुत गहरी हैं।

'प्रथम किरण' में कवि ने यथार्थ के जिस बीज को रोपा था उसका अकुरण 'हिमाचला' मे प्रस्फटित हुआ। 'ऑधी और चॉदनी' में इसने वृक्ष का रूप धारण किया। वह वृक्ष फला–फूला 'हम शिल्पी संत्रास के' कविता–संग्रह में। युग के संत्रास को झेलता कवि समग्र समाज का प्रतिनिधित्व करता है। वह शोषण का विरोध करता है। गन्दी राजनीति की परते उधेड़ता है, समाज को आईना दिखता है। यथार्थ की एक झलक देखिए–

"कैंचियों, जंजीरों व छुरे चाकुओं से बने
एक झूलते विशाल तंग पुल पर से
चले जा रहे हैं हम सब लोग।
कौए की चोंच–से
घने–काले–सुनसान–ठण्डे
साँय–साँय भीमाकार अँधेरे में।" [4]

'मानव–संस्कृति : मेडिकल चैक अप' शीर्षक कविता में कवि स्पष्ट करता है कि धरती की बेटी संस्कृति का रूप,

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'आदमी', पृष्ठ 10
2 वही, 'आदमी', पृष्ठ 11
3 'हम शिल्पी सत्रास के' 'आदमी का रक्त', पृष्ठ 76
4 वही, 'खूनी पुल पर से होकर', पृष्ठ 21

आकार–प्रकार, मनोहर है किन्तु वह रास्ता भूली–सी खोई–खाई–सी रहती है। जैसे उसे कोई भीतरी घुन खाए जा रहा है और यह पीलिया, सूखा, मिरगी, टी.बी. या कैंसर जैसे किसी रोग से ग्रस्त है। आवश्यकता है शीघ्र ही इसके मैडिकल चैक अप की–

"पीलिया, सूखा, मिरगी, टीबी या कैंसर–
है क्या बेचारी अपने किसी रोग से बेखबर!
आँखें सूनी–सूनी!
अरे, रोग है इसे तो कोई अन्दरूनी!
जल्दी चैकअप कराओ!" [1]

धरती की बेटी संस्कृति के शरीर मे उत्पन्न हो रही बीमारियो के चेकअप का सन्देश देने वाला यही कवि जब अपने चारो ओर देखता है तो उसे स्पष्ट करना पडता है–

"पर मिले मुझे तो यहाँ देखने को–
आँधियों में उड़ते प्याज के छिलके से निरीह प्राणी!
बन्दूक की बैटन से पिटते– नंगे स्त्री–पुरुष, करते आर्तवाणी,
खादी वर्दियाँ, बमवर्षक जहाज,
पलटने, आक्रमण और युद्ध के साज़!
सृष्टि मिली – सूअरों का बाड़ा,
आदमी– खून की पौ में तैरता पड़ा पाड़ा।" [2]

समाज के प्रत्येक अवयव जनता को प्रगति के लिए प्रेरित करती है। मानव में दया, प्रेम, सहानुभूति, तथा साहचर्य आदि मानवोचित गुण समान की उन शक्तियों को संघर्ष के लिए जागृत एवं संगठित भी करती है जो पुरातन को विनष्ट कर नूतन का सृजन करने में सहायक हो। गुलामी की जंजीरो को तोडने के लिए कवि जन–मानस में राष्ट्रप्रेम का अकुरण करता है। फलतः उसकी रचनाओं में अतीत का गौरवगान स्वतः फूट पडा है–

"प्रथम सभ्यता का उन्नायक, युग–युग की महिमा से मण्डित,
शुद्ध ज्ञान का आदि स्रोत यह महादेश प्राचीन अखण्डित,
भव्य आर्य–संस्कृति का स्वामी, सृष्टि मुकुट, जन–मन का प्यारा।
महिमामय है देश हमारा।
ब्रह्म–ज्ञान की ज्योति मनोहर फूटी सबसे प्रथम यहीं पर,
अमर चिरन्तन आदर्शों का पालन है नित हुआ यहीं पर,
यहीं आर्य–ऋषि–कम्बु–कंठ से साम–गान सी फूटी धारा।
महिमामय है देश हमारा।" [3]

व्यक्ति और समाज की स्थिति में सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षिक एवं वैज्ञानिक आदि तत्वों से प्रभावित होकर परिवर्तन होता रहता है। एक स्तर पर युगगत स्थितियाँ समाज को प्रभावित करती है तो दूसरे स्तर पर समाज भी युग–चेतना को प्रभावित करती है।

'नया संकल्प : जन गीत' और 'अपनी राम मडैया' जैसी रचनाएँ सहज अभिव्यक्ति को तो दर्शाती ही है, साथ ही

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'मानव–सस्कृति मेडिकल चैक अप', पृष्ठ 49
2 वही, 'धोखा हुआ', पृष्ठ 80
3 'प्रथम किरण' 'राष्ट्र गीत', पृष्ठ 1

विश्व–बंधुत्व की भावना और शोषण का प्रतिकार करती भी प्रतीत होती है। यह कवि की संघर्ष चेतना को प्रतिबिम्बित करती है। यहाँ निराशा नही है बल्कि कवि को अपनी शक्ति तथा अपने देशवासियो की अतुल शक्ति पर पूर्ण विश्वास है–

"घोर अंधेरे से लड़, नाकों चने उसे चबवा,
मानव का मंगल–प्रभात हम वापस लायेंगें।
हम सब मिलकर मधुर प्रेम–बंसरी बजायेंगें।
इस धरती पर विश्व–शान्ति के बादल छायेंगें।" [1]

तथा–

"नींद हमारी जो छेड़े, हो नरक कुण्ड का वासी,
मुआ, जनम सौ चैन न पावे ऐसा सत्यानासी।
राम दुहाई! कान खोल सब सने तत्त की, भैया।
बनी रहे यह घास–फूस की अपनी राम–मड़ैया।" [2]

जो कवि को सत्रास और निराशा की घातक लालिमा बिखेरने वाला कवि कहते हैं वे निम्न पंक्तियों को देखें, परखे और सिद्ध करें कि इनमे कहाँ है वे भाव जो सत्रास और निराशा को कही भी जन्म दे रहे हैं–

"पर भूखा, थका, नंगा आदमी जग गया है–
अब तार–तार कर डालेगा,
धज्जी–धज्जी उड़ा देगा
नफ़ासती सफ़ेदपोश सभ्यता की
जीवन–देवता के पथ की तीर्थ यात्रा
आरम्भ हो चुकी हैं।" [3]

सुनसान उत्तरी–दक्षिणी ध्रुवो में फैले बर्फों की ठोस मोटी परत और लोहे की चट्टान से भी कठोर हो गई मानव–चेतना जिसे अब काटना, तोडना अति आवश्यक हो गया है– कवि को इसका पूरा आभास है, तभी तो वह कहता है–

"पर अब काटनी तो होगी ही
चीन की दीवार–सी मोटी वह लम्बी जड़ बरफ!
बिलो नार्मल है तापमान मानव–चेतना का चौतरफ!
भारी जड़ चट्टान को डायनामाइट से काट उड़ाना है,
लाख–लाख हॉर्स पॉवर का ट्रेक्टर चलाना है।" [4]

समग्रतः समाज का एक्सरे खींचती ये रचनाएँ करुणा, दर्द, व्यंग्य, शोषण, आशा–निराशा सभी को रेखाकित करती चलती है। 'तरुण' की रचनाएँ समाज का दर्पण है। प्रदुषित वातावरण और असहनीय व्यवस्था के प्रति कवि ने जिस आक्रोश को अभिव्यक्ति दी है वह कवि की चेतना को समाज से जोड़ती है। लोक–जीवन और लोक–संस्कृति से आलोकित समाज को नवीन रूप मे हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। केदारनाथ अग्रवाल, मुन्नु लाल शर्मा शील', 'नागार्जुन' 'मुक्तिबोध' और 'त्रिलोचन' की तरह 'तरुण' सामाजिक अभिव्यक्ति के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं।

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'नया सकल्प जन गीत', पृष्ठ 401
2 वही, 'अपनी राम मडैया', पृष्ठ 402.
3 वही, 'भाँप गई', पृष्ठ 450
4 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' . 'हथौडा चाहिये तोडो चट्टान को', पृष्ठ 73

सामाजिक दृष्टि में भी कवि 'तरुण' का मन्तव्य किसी निश्चित क्रान्तिकारी उद्भावना की घोषणा करना नहीं रहा, उन्होने तो समाज मे प्रचलित गलित एवं प्राचीन रूढियो एव अनीतियो का ही विरोध किया है तथा एक स्वच्छन्द सर्वतोन्मुखी उदार समाज की परिकल्पना की है। कवि के गीतों मे यह निर्धारण उनके समाजशास्त्रीय रूप को व्यक्त न करके उनके उदारवादी मानव प्रेम को ही व्यंजित करता है।

संत्रास का स्वर

154 MEHTA LIBRARY, THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA

गीतकार जिस जमीन पर खडा होकर अपनी संवेद्य रागात्मक उद्भावनाओं को व्यक्त करता है, उसमें संप्रेषण का जादू भी सन्निहित करता है और इसी सम्मोहन मे बॅधकर रसिक पाठक साधारणीकरण की स्थिति का अनुभव करता हुआ गीतकार के स्वरों में स्वर मिलाने लगते हैं। सत्रास, शोषण, दमन, अन्याय, अनीति, व्याभिचार, भ्रष्टाचार आदि का चक्र पुराकाल से चला आ रहा है और गीतकार तभी से इस व्यथा–कथा को रागात्मक स्वर लहरियो मे व्यजित करता रहा है। पहले यह राग लोक रजक रहा था बाद मे यह अभिजातवर्गीय संचेतना से जुडकर नागर साहित्य मे अभिहित हुआ। *"संत्रास एक युक्ति है, जो व्यष्टि–स्तर पर कविता के विविध आयामों को सर्जनात्मक संचरण देती है, और समष्टि–स्तर पर यह व्यापक जीवन–विद्रूपता से प्रेरित क्रान्ति को जन्म देती है। कविवर 'तरुण' ने इसे व्यष्टि–स्तर पर पहले भली–भाँति भोगा है, चेतना में गहरे रचाया पचाया है, और तब जाकर उसे अनुभूति–प्रक्रिया में ढालकर सूक्ष्म–सुदृढ़ कला–रेखाओं में रूपायित किया है। कतिपय सर्जकों/समीक्षकों ने " युद्ध के पश्चात् व्यापक स्थितियों" से ही संत्रास को सम्बद्ध किया है। किन्तु कविवर 'तरुण' ने इतने से ही सन्तुष्ट न होकर जीवन की जड़ों तक पहुँचे गहरे और व्यापक मानवीय सरोकारों और वैयक्तिक–सामाजिक–सांस्कृतिक पीड़ाओं से उसे सर्जन–स्तर पर बहुत बारीकी से संयुक्त किया और गूँथा है। उन्होंने संकुचित व परिसीमित अर्थ मात्र से ही 'संत्रास' को ग्रहण नहीं किया, किन्तु उसे समष्टि–स्तर की व्याप्ति तक पहुँचाया है।"* [9]

"पहुँच–पहुँच मानव प्राणों तक
मेरा सुख भी हो अजरामर!" [1]

इनकी यही मानवीय अभिव्यक्ति कालान्तर में बडी तल्ख और आक्रोशी मुद्रामयी हो उठी है–

"दूसरी ओर लाठी, गोली, अश्रु–गैस–
कुत्ते के कान से मुड़े राशन कार्ड,
और थके पग–डगमग, डगमग, डगमग।
अपने प्यारे देश ने भी
रोलिंग नामों वाली सोने की अगूंठी पहन रखी हैं।" [2]

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने संत्रास को परिभाषित करते हुए 'तरुण'–काव्य ग्रथावली' की 'भूमिका' में लिखते है, *".... संत्रास की कविताओं को सबसे पहले स्थान पर संकलित किया है। हाड़–मांस का मनुष्य अपनी सीमाओं से अपरिचित रहकर जो कुछ करता है वह नियति के वशीभूत होकर ही करता है। संत्रास और पीड़ा की सृष्टि मनुष्य स्वयं करता और उसमें फँसकर भूल जाता है कि हम अपने विनाश का जाल स्वयं बिछा रहे हैं। आदमी बहुरूपिया होकर जीता है। आदमी विभिन्न मुद्राओं और मुखौटों में दिखाई देता है। वह युगीन संत्रास की पीड़ा से गिरगिटिया हो गया है अतः युगीन संत्रास से उत्पन्न पीड़ाओं में उलझकर जीवन के ध्येय से विमुख हो जाता है। मनुष्य की नियति की इस विडम्बना को कवि 'तरुण' ने इस खण्ड की कई कविताओं में व्यक्त किया है 'धोखा हुआ', 'मैं गा न सकूँगा', 'गिरवी', बीज वह अनादि', 'सूरज था कभी' शीर्षक कविताओं में युग बोध व युग–संत्रास की विभिन्न स्थितियों को देखा जा सकता है।"* [10]

'तरुण' ने युग–बोध और संत्रास की मन स्थिति से गुजर कर ' विद्रोह तथा आक्रोश का स्वर भी अपनाया है। युग

1 'प्रथम किरण' 'अभिलाषा', पृष्ठ 21
2 'ऑधी और चॉदनी' 'स्वतन्त्रता की रजत जयन्ती', पृष्ठ 76

सत्य ने ही निम्न पंक्तियों को जन्म दिया है–

"आज मेरी सॉंस भी हो गई है
उसी पुरानी कुहरिल–कसैली, धुमैली–अँधी
घुटन का ही प्रतिरूप!
युग पीड़ा से!" [1]

घुटन और बेबसी की इस स्थिति से मुक्त होने के लिए कवि को यह 'अस्वीकार्य' स्वीकार है–

"जीवन है स्वीकार्य न मुझको सीधी खींची लकीर–सा
चाहे वह झँकार–भरा नूतन सितार का तार हो!
गोलाकार क्षितिज–रेखा–सा भी जीवन लूँगा नहीं–
चाहे वह वन–वल्लरियों–सा सुन्दर घुँघरदार हो!
जीवन लूँगा मैं तो आँधी, नदी या तूफान–सा,
जिसमें तड़पन हो, ज्वाला हो, गुंजन, मेघ–मलार हो!" [2]

'तरुण' की काव्य–चेतना गर्जन–सर्जन करती हुई क्रान्ति की प्रचंड ठोकर से जड व्यवस्था को ढ़हाना चाहती है क्योंकि 'मनुष्यता का सनातन स्वर चिरबन्दी' हो गया हैं। यहॉ 'तमोमयी सत्ता के ध्वंस की पूरी स्वीकृति है' और कवि के हस्ताक्षर सर्वप्रथम है। यहॉ यंत्रणापूर्ण ॲधेरो के खिलाफ तथा जर्जर मान्यताओं के विरोध में खुली बगावत है। 'दूध–भात के लिए स्वर्ण पिंजड़े का तोता' बनना कवि को स्वीकार नहीं।

डॉ0 रघुवीर शरण 'व्यथित' के अनुसार ..... ***"कविवर 'तरुण' मानवता, संस्कृति और संत्रास की पीड़ा के कवि हैं, यह अन्ततः 'आँधी और चाँदनी' में स्पष्ट होता है। यहाँ उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त स्पष्ट–सहज एवं तलस्पर्शिनी हो उठी है। चालीस–पैंतालिस वर्ष की, जीवनानुभवों से युक्त, उनकी काव्य–यात्रा में हर्ष–विषाद से धुली मानवता, चिरन्तन जागरुक स्वाध्याय और अहर्निश अभ्यास के संस्कारों से प्राप्त सांस्कृतिक विरासत में पनपी और अर्जित संस्कृति पर छाये विराट संत्रास को उन्होंने साधारणीकृत करके भोगा है। वे संत्रास की व्यक्तिगत नहीं; तत्व को अवगत करने वाली साधारणीकरण की भूमिका पर इस पीढ़ी के, तथाकथित आधुनिकतापूर्ण पीढ़ी के चक्रित और भय–चकित, किंकर्तव्यविमूढ़ कर देने वाले विश्वव्यापी संत्रास को भोगते हैं।"*** [11]

इन कविताओ में संत्रास के नाम पर युग–जीवन की 'विषमताओं और विद्रूपताओं', का जो खुला चित्र अंकित किया गया है, वह एक दीर्घकाल–व्यापी एव विविध क्षेत्रीय कटु अनुभवो का एक सचित परिणाम है। 'तरुण' का कवि हृदय अपने रागात्मक संवेगों की प्रबलता और मूलगत मानव–निष्ठा के कारण ही तो मानवीय पतन और पराभव के कारुण दृश्यों को देखकर इतना दु.ख–दग्ध और विक्षुब्ध हो उठा है कि उसकी वाणी से कुछ असन्तुलित उद्‌गार फूट पडे है। वस्तुतः ये कवि की स्थायी मनोदशा के नहीं, किन्तु उसकी क्षणिक रूप से उदिग्न मनः स्थितियो का ही प्रतिनिधित्व करते है।

डॉ0 खण्डेलवाल का काव्य वृहद् रूप मे परिताप और दुखभोग की कथा, कामनाओ और स्वप्नों को झकझोरते सरोकारी और विकारक फिक्रों –चिन्ताओं का काव्य है। यह इसलिए ऐसा है कि वह समाज के समस्त सड़े–गले, दुर्गंधियाते के नाश के माध्यम से उसका पुनर्निर्माण देखने के आकांक्षी है। 'हम शिल्पी संत्रास के' के माध्यम से उन्होंने संत्रास में भयावह–दैत्य का प्रतीक दिया

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'आज, मेरी सास', पृष्ठ 28
2 'आँधी और चाँदनी' 'जीवन तीन स्थितियाँ', पृष्ठ 29

है जिससे वर्तमान कालिक मानव का बचाव नही है। संत्रास का यह दैत्य भय, दुर्गति, तंगहाली, मनक्लेश, मनोवेदना, क्लान्ति–औन्मन्य, अप्रजायिता, नपुसक बनकर चतुर्दिक फैला है। डॉ0 खण्डेलवाल अन्त· प्रकृतिस्थ, स्वाभाविक या अकृत्रिम होना ही सर्वोत्तम उपाय सुझाते हैं। 'देते है' शीर्षक कविता में कवि गाली देने वाले का पक्ष लेते हुए कहता है–

"वे गालियाँ देते हैं।
किसी का कुछ लेते तो नहीं–
–देते हैं।
अभिव्यक्ति का सुख लेते हैं।
अभिव्यक्ति–
कला–जीवन का सार–तत्व–
उस पर कैसा बन्धन?
आपाधापी, स्वार्थ, स्पर्द्धा,
संग्रह और भोग के युग में–
श्रद्धानुसार हृदय की ठेठ गहराई से,
जो खुल कर देते हैं–
जगत् में ऐसे केते हैं?" [1]

युगीन यथार्थ की विद्रूपताओं की टकराहट से अपनी तीखी अनुभूतियो अधिकांशत· उनकी वृत्तगन्धी गद्यात्मक रचनाओ मे ही अधिक उभरी है। किन्तु फिर भी आधुनिकतम विषम भौतिक परिवेश की विसंगतियो से उत्पन्न पीड़ा, संत्रास, आक्रोश और विद्रोह की प्रभावशाली अभिव्यक्ति उनके कई गीतो में मिलती है। 'मै बनवासी होता' शीर्षक प्रसिद्ध गीत मे मानव–मन के उल्लास और आनन्द के सहज स्रोतो को सुखाने वाली आज की सत्वभक्षी, जीवनग्राही, छद्मवेशी सभ्यता के प्रति गहरा अवसाद और आक्रोश व्यक्त करते हुए डॉ0 'तरुण' ने युगीन विषमताओं को बडे मार्मिक रूप मे व्यक्त किया है–

"कुसुम–कीट–सा हाय, सभ्यता ने मुझको चर डाला,
मन पर जाला, मुख पर ताला और हँसी पर पाला!
मैं प्रकाश का अमर पुत्र हा! मुक्ति–लोक का प्राणी–
आज रह गया– भूल उड़ाने मुक्त, रसीली वाणी–
दूध–भात के लिए स्वर्ण–पिंजरे का बनकर तोता।" [2]

सन् 1969 के बाद भी उनकी कविताओं में संघर्ष, सामाजिक विसगति और जीवन के तीखे अनुभवों की अभिव्यक्ति बहुत अधिक हुई है। जीवन की निरर्थकता का बोध कवि को इस सीमा तक है कि वह अपने को चाबी से चलने वाला जापानी खिलौना समझने लगता है। जैसे–

"जापानी खिलौने–सा चाबी से चलता हूँ!
हर चीज अब मुझे लगती है– लुढ़की–विकृत–औंधी–
मुझे जाने कैसी–सी हो गई है–
चेतना की चुप्पी, मन का अँधेरा, घुप्प या आत्मा की रतौंधी!" [3]

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'देते हैं', पृष्ठ 13
2 'हम शिल्पी सत्रास के' . 'मै बनवासी होता', पृष्ठ 71
3 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'सन्नाटा', पृष्ठ 64

युग बोध और युग–संत्रास विषयक कविताओ मे इस महाकवि के अन्तर्मन की पीडा व्यक्त हुई है, किन्तु वह नैराश्य के तिमिर मे नही बल्कि आक्रोश के उजाले की ओर अग्रसर करती है। 'आदमी का रक्त' कविता के अन्तिम शब्दो की बिम्बात्मक छवि कितनी सटीक है–

"सुबह – पीला
दोपहर – नीला
शाम को – लाल
और रात को – श्याम
– गिरगिटिया हो गया है अब तो आदमी तमाम!" [1]

उपर्युक्त शब्द–चित्र में समय के साथ–साथ रगो को लक्षित करने के पीछे बहुत गहरी चपेट और अन्तर्भेदन की दृष्टि है। इसी प्रकार 'जीवन–पतग', 'धोखा हुआ', 'चोंचों का खेल' आदि कविताओ में अभिव्यक्त व्यंग्य और वेदना की जड़ों मे भी जन–जागृति एवं लोक–हितैषणा का भाव सन्निहित है। 'चोंचों का खेल' की समाप्ति के साथ सत्य को उद्‌घाटित करने वाले कवि ये शब्द कितने मर्मस्पर्शी है–

"पापा, प्लीज! देखने दो हमें चोंचों का यह खेल,
बड़ा मजा आ रहा है, अहा, चल रही हैं जैसे गुलेल!
बताओ न ? – गिलबिला, गिलबिला–
तश्तरी में यह क्या है जो टूटता,जुड़ता, बिखरता, और बनता?"
"कुछ नहीं राजा बेटा, यह तो है स्वतन्त्र भारत की जनता।" [2]

वर्तमान युग की सामाजिक विवशताओं, विसंगतियों एव विद्रूपताओं का निरूपण करते हुए कवि ने एक ओर यथातथ्य चित्रण किया है तो दूसरी ओर उससे हताश न होकर चुनौती के रूप में अंगीकार किया है। इस विषय की कविताओं में प्रज्ञा एव प्रतिभा का सहज समन्वय दृष्टिगत होता है। 'आत्मकथा' शीर्षक कविता मे कवि की स्वानुभूति वस्तुत: आज के युग की सर्वानुभूति है। प्रारंभिक पंक्तियों की बानगी प्रस्तुत है–

"हम जीवितों की तरह कभी जिये ही नहीं
हमें बलात् जिलाया गया।
बात हमारे गले कुछ उतरी ही नहीं,
बाँस की नली से, जबरदस्ती
हमें सब कुछ बना–बनाया पिलाया गया।" [3]

मानवता के अभाव में मानव कैसे सुखी रह सकता है। कवि का यह दर्द प्रत्येक संवदेनशील हृदय का दर्द है। आज नर–नारायण वेश, पुष्पो मे मधु का लेश, मीठे सन्देश अथवा मंजुल विहगों का देश नहीं है, क्योंकि मानव में मानवता शेष नहीं है। बुद्धि के बवण्डर मे हृदयादर्श की धूमिल छवि की मर्मभरी पीडा कवि के शब्दों मे अवलोकनीय है–

"विज्ञान जगा, हो गये सभी मतवाले,
जग गई बुद्धि, पड़ गये हृदय पर ताले,
धन के भूखे, पाषाण हुए नर–नारी

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'आदमी का रक्त', पृष्ठ 76
2 वही, 'चोंचों का खेल', पृष्ठ 41
3 'आँधी और चाँदनी' . 'आत्मकथा', पृष्ठ 53

जीवन में अब भावुकता शेष नहीं है।
अब मानव में मानवता शेष नहीं है।" [1]

संत्रास, विडम्बना और युग बोध को मार्मिक अभिव्यक्ति देने वाली अनेकानेक कविताएँ 'तरुण'–काव्य ग्रन्थावली' में सकलित हैं। इसे 'तरुण' काव्य की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति भी कहा जा सकता है। कवि ने युग–पीड़ा को जैसा देखा, भोगा और सहा है, उसी यथार्थ को बडी ईमानदारी से इन कविताओं मे प्रस्तुत किया है। इन कविताओं की विषय–वस्तु को देखकर ऐसा लगता है मानो कवि, युगविषमता का निदान और उपचार – दोनो दायित्वों को परम गभीरता से निभाने के लिए कृत संकल्प हो। आस–पास के वातावरण में साधारण–सी–साधारण घटना को कविवर 'तरुण' की कवि–दृष्टि जिस सत्य को ढूंढकर व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्ति–प्रदान कर देती है। वैसी काव्य–दृष्टि वर्तमान हिन्दी–कवियो में बहुत कम देखने मे आई है। ऐसी कविताओ की रचना करके कवि जन–समाज से भी जुडा है एव साहित्य और समाज का पारस्परिक सम्बन्ध यहॉ अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ देखा जा सकता है। इस प्रवृति का केन्द्र–बिन्दु मानव है। स्वय कवि आदमी के सजीले–सलोने सपनो और खुशहाली के लिए प्रतिश्रुत है–

"मैं प्रतिश्रुत हूँ–
अपने रक्त की लाली के प्रति,
उषा की सरस गुलाली के प्रति,
धरती की ओस–जड़ी हरियाली के प्रति,
आदमी के सलोने सपने और खुशहाली के प्रति–
मैं प्रतिश्रुत हूँ।" [2]

कवि के लिए मानव, कामधेनु, कल्पवृक्ष और देवताओ से भी बढकर है। वह अपनी दुर्बलताओं में भी चिर–सुन्दर और चिर–नवीन है। दुर्भाग्यवश मानव ने युगीन परिस्थितियों के कारण, कुछ नियतिवश, अधिकाश मे अपने ही कारनामो से चारों ओर पीड़ा, संत्रास और अभाव की ऐसी सृष्टि निर्मित कर ली है, जिसमें स्वय ही उसका दम घुटने लगा है, चिन्तन कुंठित हो गया है, विश्वास डिग गया है। शेष बचा है केवल 'लिजलिजापन'। मानव का यह पतन कविवर 'तरुण' के लिए महत् दु:ख का कारण है। ऐसे ईमानदाराना सृजन मे प्रसव पीड़ा जैसे दर्द का होना अनिवार्य भी है। कवि ने मानव के इस बहुरूपियापन चारित्रिक रीढ़ की हड्डी से विहीन होने और गिरगिटिया हो जाने पर अनेक तीखी व्यग्य–रचनाओ की सृष्टि करके युग–सत्रास और युग–बोध को ही अभिव्यक्ति दी है– 'आदमी', 'आदमी का रक्त', 'मानव–संस्कृति · मैडिकल चैकअप', 'मै गा न सकूँगा', 'कोकीन का इंजेक्शन', 'धोखा हुआ', 'चोचो का खेल', 'गिरवी', 'कलई', 'गोकुल की पकौडियॉ' आदि कविताएँ इस सन्दर्भ की श्रेष्ठ रचनाएँ है। यहॉ दो उदाहरण दृष्टव्य है—

क. *"धरती की बेटी– संस्कृति....*
पथ–भूली, खाई–खोई–सी रहती है, करती रहती है
मन में स्वेटरी उधेड़–बुन
जाने क्या खाये जा रहा है इसे–
कोई भीतरी घुन!
अरे, रोग हैं इसे तो कोई अन्दरूनी
जल्दी चैक कराओ।" [3]

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'मानवता', पृष्ठ 360
2 वही, 'प्रतिश्रुत हूँ', पृष्ठ 452–453
3 'हम शिल्पी सत्रास के' 'मानव–सस्कृति मेडिकल चैकअप', पृष्ठ 49

ख. *"सारी सभ्यता, सारी संस्कृति और सारी धरती—*
लग रही है मुझे तो अब ऊसर, बंजर और परती!
सुन्न व निर्जीव पड़ी —
कोकीन के इंजेक्शन—लगी ;
मानों मेरे गले के भीतर की—सी चमड़ी!" [1]

कवि ने युग—सत्रास के कारण खोजने के भी प्रयास किए है। कारण हैं— स्वार्थ परक राजनीति, वैज्ञानिक अविष्कारों का अँधाधुंध प्रसार, कृत्रिम सभ्यता, बुद्धिजीवियों का पुस्तकीय कादम्भ, पारम्परिक विद्वेष, भौतिकवाद, जीवन—मूल्यों का ह्रास आदि। स्वार्थपरक राजनीति का एक प्रतीक है— 'सॉभर झील'— जिसमे अच्छा—बुरा सब कुछ लवण मे परिवर्तित हो जाता है—

"साँभर झील से भी लम्बी—चौड़ी है एक झील और भी बड़ी
जिसमें सब समान हैं
फूल हो गया काँटा, पर्वत हो या कंकड़ी,
आकांक्षा, सम्बन्ध, मुसकान, प्रतीति—
कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन—मूल्य, प्रीति—
कुछ भी डालो, सब कुछ उसमें गल—सड़कर हो जाता है—
राजनीति, राजनीति, राजनीति!" [2]

आधुनिक वैज्ञानिक उन्नति ने मानव के लिए भौतिक सुख—साधन तो जुटाए है, परन्तु बदले मे उसके मन की सुख—शान्ति छीन ली है। वह निरन्तर छीज रहा है—

"हम सब साधन—सम्पन्न, किन्तु मन चिर दरिद्र!
रे कहाँ रहेगा तेल ? दीप के तले छिद्र!
हो रही सभ्यता आज घड़ा शिव—मन्दिर का,
रे, बूंद—बूंदकर बहा जा रहा रस अपार!" [3]

'तरुण'—काव्य ग्रन्थावली' मे ऐसी सैकडो कविताएँ हैं जिनमें कवि ने ईमानदारी से युग—सत्रास और युग—बोध को तीखी—मार्मिक— आर—पार भेदने वाली वाणी दी हैं। विस्तार—भय से कुछ और कविताओं का नामोल्लेख करके ही सन्तोष करना पडता है— 'सॉप' आवास—समस्या', 'कुर्सी', 'डेमोक्रेसी', 'नाखून— भॉत—भॉत के', 'कला—कृति की भेंट', 'एडमिनिस्ट्रेशन', 'देश—सेवक', 'एकेडेमिक', 'तो फिर मैंने यों किया', 'तिलक, चेहरे और आईना' आदि , आदि।

इन पंक्तियों को पढकर लगता है कि कवि की आस्था खण्डित हो गई है। कभी कवि ने भगवान के प्रति प्रार्थना के गीत लिखे थे, अब लगता है कि उनका किसी अतीन्द्रिय सत्ता पर विश्वास नही रह गया है। अपनी अन्तश्चेतना को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं—

"पर मिले मुझे तो यहाँ देखने को—
आँधियों में उड़ते प्याज के छिलकों—से निरीह प्राणी!
बन्दूक की बैटन से पिटते नंगे स्त्री—पुरुष, करते आर्त्तवाणी!
खाकी वर्दियाँ, बमवर्षक जहाज,

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'कोकीन का इजेक्शन', पृष्ठ 38
2 'तरुण—काव्य ग्रन्थावली' 'राजनीति की सॉभर झील', पृष्ठ 446
3 वही, 'दीप के तले छिद्र', पृष्ठ 104

पल्टनें, आक्रमण और युद्ध के साज़!
सृष्टि मिली– सूअरों का बाड़ा,
आदमी– खून की पौ में तैरता पाड़ा!" [1]

कवि को आज की विषम परिस्थितियों ने बहुत अधिक विक्षुब्ध कर दिया है, और तभी यह महसूस करता है कि उसके साथ धोखा हुआ है, इस कविता का यही शीर्षक है– 'धोखा हुआ'।

"निस्पन्द हो गया है अब संस्कृति का सारा स्नायुजाल,
निर्जीव पड़ गई है अब हम सबकी आत्मा की खाल।" [2]

आधुनिकता की एक बडी पहचान यह है कि उसने अपने आदमी को अपने ऊपर विश्वास करना सिखाया है। आज मनुष्य अपनी हार–जीत, अपने सुख–दुख, अपने कष्ट–क्लेश, अपने हास–रुदन और अपनी प्रसन्नताओं और वेदनाओ के लिए किसी परालौकिक शक्ति को जिम्मेदार नहीं ठहराता। उसके लिए न भाग्य की विडम्बना का महत्त्व रह गया है और न नियति नटी के अभिनय का। हॉ, समाज का बोध या जातीय बोध उसमे अवश्य बढा है। अब वह अकेले–अकेले मुक्ति नही चाहता। 'तरुण' अभिमन्यु के परम्परागत मिथक को नये परिवेश से जोडकर अपनी जिजीविषा और जातीय चेतना का यह स्वर मुखर करते हैं–

"मुक्त करे भोले व्यक्ति को, मुक्त करे जो पीड़ित समाज
तोड़े भेदे आज के चक्रव्यूह को जो जांबाज–
मैं तो उसी को कहूँगा ताजा अभिमन्यु आज।" [3]

डॉ0 'तरुण' की काव्य–यात्रा बडे दिव्य भाव–लोक में प्रारम्भ हुई थी परन्तु परिवेश की जकडन, यथार्थ की जरुरत और मूल्य–संक्रमण ने उन्हे एक प्रश्नाकुल व्यक्ति बना दिया। जैसे–जैसे परिस्थितियॉ बदलती गई उनकी कविताओं का स्वर अधिक धारदार और अधिक पैना होता गया। क्योंकि उन्होंने आज के मनुष्य का पल–पल बदलता स्वरूप देखा, इस भयावह परिवेश की यातना भोगी और मूल्यों के टूटने का स्वर अपने कांनों से सुना। वे इस टूटन के दर्शक नही, भोक्ता है। इसलिए अब वे देखते है–

ठण्डी–ठण्डी नरम प्राणवल्लभा हरियाली में
हो रहा है वही सनातन मांसल जीवन–रस व्यक्त!
बस बदला है तो एक –
केवल, आदमी का रक्त!" [4]

और वे देखते हैं यह भी कि चॉद तो बहुत पहले से स्मगलरों का साथी था ही, अब सूरज मे भी वह तमतमाहट नही रही, वह ओज नही रहा जो ॲधेरे की सत्ता को ललकार संके। वे प्रतीकात्मक शैली मे सूर्य को ललकारते है–

"सच्चा हो तो अधर्म–अन्याय की सृष्टि को भून दे
अंधकार बढ़ता जा रहा है– क्यों न रे
एक बार हड़कम्प पैदा करता हुआ–
गरजता है वह बेशरम–
सत्यमेव जयते नानृतम्।" [5]

---

1 'हम शिल्पी सन्त्रास के' 'धोख हुआ', पृष्ठ 80
2 वही, 'कोकीन का इजेक्शन', पृष्ठ 38
3 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'एक ताजा अभिमन्यु', पृष्ठ 71
4 'हम शिल्पी सत्रास के' 'आदमी का रक्त', पृष्ठ 75
5 वही, 'सूरज–था कभी', पृष्ठ 88

परिवेश की बढती कृत्रिमता और इस बढते दबाव और यथार्थ से विकृत चेहरे से क्लान्त कवि एक बार पुनः प्रकृति की ओर लौटना चाहता है। चाहता है कि फिर से उसे अकृत्रिम जीवन मिल जाय। इस जीवन–जगत् की यातनाये हर श्रेष्ठ कवि को अन्ततः प्रकृति के सानिध्य में पहुँचकर सहज जीवन जीने की प्रेरणा देती रही है। पं0 नरेन्द्र शर्मा ने अपनी सहचरी से कहा था– "हरे जगल के बीचो बीच, न कोई आया गया जहाँ। चलो हम दोनो चले वहाँ।" और उमर खैयाम ने लिखा था–

"न घनी सिर पर तरुवर की डाल
हरी पाँवों के नीचे घास
बगल में मधु मदिरा का पात्र
सामने रोटी के दो ग्रास
सरस कविता की पुस्तक हाथ
गा रही छेड़ सुरीली तान
मुझे अब मय – नन्दन–उद्यान।" [1]

डॉ0 'तरुण' ने अपनी अनेकानेक कविताओ मे जीवन की सहजता की कामना की है और अकृत्रिम जीवन की लालसा प्रकट की है। 'अपनी ही मस्ती' में जहाँ वे खेत–खलिहान के पास एक झोपड़ी मे तनाव–रहित जीवन की लालसा प्रकट करते है वहीं 'मैं बनवासी होता' रचना मे तो सभ्यता को पूरी तरह कोसते है। इस सभ्यता ने मानव की सहज जीवनानुभूति को चर डाला है और प्रकाश का अमर पुत्र अब पिजरे का बन्दी हो गया है। इसलिए उन्हें लगता है–

"हम तो इन्द्र धनुष से दिल के
धन, पद– सड़े प्याज के छिलके
रोटी मट्ठा खा जी लेंगे–
मरु– बबूल के तरु के नीचे।" [2]

इसी सहज जीवन की कामना का परिणाम है कि कवि केवल सुन्दर और सत् से ही नही, असत् और भदेस से भी प्रेम करता है। भदेस के प्रति सहज आकर्षण भी आधुनिक जीवन की एक विशेषता है। डॉ0 'तरुण' असुन्दर को देखते हैं। वह उन्हें आश्चर्याभिभूत करता है–

"सरल, स्निग्ध, सौम्य व सुषमावान–
अब बड़े कुरूप हो उठे हैं मेरी आँखों के लिए!
अब मुझे परुष, भदेस, अनगढ़ का
रूप, यौवन और सौन्दर्य
निर्निमेष निहार लेने दो!
आह, कहाँ छिपा था अब तक यह रमणीय!" [3]

डॉ0 'तरुण' इसलिए आधुनिक हैं कि वे सतत कर्मरत हैं। उनकी रचना–प्रक्रिया आज भी गतिवान है। उनकी सरस्वती अभी मूक नही हुई। वे प्रश्नाकुल है वे केवल सुन्दर और रमणीय को ही नही असुन्दर और भदेस को भी स्वीकार करके चलते है। उसमे भी सौन्दर्य की परख कर लेते हैं। उनमे अन्याय के प्रति आक्रोश है। मूल्य–सक्रमण के दौरे मे उन्हे परिवेश की भयावहता डराती नहीं अपितु

---

1 अनुवादक–डॉ0 हरिवंश राय बच्चन 'उमर खैयाम की रूबाईयाँ', पृष्ठ 13
2 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'मुक्तक', पृष्ठ 91
3 वही, 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 69

वे उसे बदल डालने को संकल्पबद्ध होते हैं। उनका चिन्तन हर दम मुखर है। उनमें जीवन का काव्य सहज स्वीकार है। उद्दाम उल्लास है। वे हर कदम पर नवीन है। उनकी काव्य–चेतना को देखकर यही कहना पड़ता है कि वे चिर–नवीन है। काव्य–मार्ग के महापर्यटक हैं, यायावर हैं, और खास बात यह है कि वे लीक छोड़कर चल रहे हैं।

सत्रास का चित्रण 'तरुण–काव्य' की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है, जो कवि को समाज से जोड़ती है। समाज की सडी–गली परम्पराओं और व्यवस्थाओ के प्रति कवि ने जिस विद्रोह को अभिव्यक्त किया हैं वह कवि की भोगी पीड़ा से जन्मा है। 'तरुण' की कविताएँ शत – प्रतिशत अपने युग से जुड़ी हुई है और युग की पीड़ा, वेदना और विडम्बना को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। साथ ही इक्कीसवी शताब्दी के इस चरण की इस रुग्ण पीढी को सचेतकर, रोग का निदान बता, बाइसवी शताब्दी की स्वस्थ पीढी मे परिवर्तित करने मे भी योगदान देती है।

व्यक्ति और समष्टि जन पीड़ाएँ

'तरुण' की काव्य–यात्रा मे पीडा सह–यात्री की तरह निरन्तर उनके साथ यहॉ है। ये रचनाऐं वर्तमान समाज का आईना है जिसमें अतिरजित कुछ भी नहीं है। इनकी अधिकतर कविताएँ वैयक्तिक पीडा से उठ कर समष्टि की पीडा की गहरी–हल्की रेखाओ को उभारती हैं। स्वयं किसी खेमे या राजनीति से सम्बद्ध किए और बिना किसी नारेबाजी के कवि समसामयिक जीवन से जुडकर यथार्थ को जिन पैनेपन से गुंजायित किया है, वह सराहनीय है ऐसा ही एक शब्द–चित्र दृष्टव्य है–

"जानता हूँ– भली–भाँति जानता हूँ, मैं–
कि इस प्रजातन्त्र में, वाणी–स्वातन्त्र्य के इस युग में
मेरी बात भून दी जायेगी,
मेरी आवाज का कवाब बना दिया जायेगा–
उठते हुए हाथों के जंगल में
त्यौरी के साथ आततायी की तरफ उठी–
मेरी उँगली खड़ाक से बन्दूक की नाल से उड़ा दी जाएगी।" [1]

'प्रथम किरण' मे 'तरुण' ने पीडा के जिस बीज को रोपा था उसका अकुर 'हिमांचला' मे प्रस्फुटित हुआ। 'ऑधी और चॉदनी' मे इसने वृक्ष का रूप धारण किया। वह वृक्ष फला–फूला 'हम शिल्पी संत्रास के' कविता–संग्रह में। इसमें यथार्थ मूर्तिमान हो उठा है अपने सही आकार–प्रकार में। यहॉ यथार्थ अन्य कविता–संग्रहो की अपेक्षा अधिक गहरा है। युग के संत्रास को झेलता हुआ कवि समग्र समाज का प्रतिनिधित्व करता है। ये कविताऍ आधुनिक युग की वाणी हैं। इन कविताओं मे युगानुभूति, अपने समय की धडकन है, अपने युग का सत्रास है। वह शोषण का विरोध करता है। गन्दी राजनीति की परते उधेड़ता है, समाज को आईना दिखाता हे। वह अपने चारो ओर फैले हुए यथार्थ को शब्दो मे समेट लेने का आकांक्षी है–

"एक झलक देखिए–
"कैंचियों, जंजीरों व छुरे–चाकुओं से बने
एक झूलते विशाल तंग पुल पर से
चले जा रहे हैं हम सब लोग।" [2]

आधुनिक युग की सर्वाधिक विकट समस्या है– शोषण। कदम–कदम पर हो रहे शोषण से सामान्य मानव त्रस्त है–

"पर मिले मुझे तो यहाँ देखने को–
आँधियों में उड़ते प्याज के छिलके–से निरीह प्राणी!
बन्दूक की बैटन से पिटते– नंगे स्त्री–पुरुष, करते आर्तवाणी,
खाकी वर्दियाँ, वमवर्षक जहाज,
पल्टने, आक्रमण और युद्ध के साज!
सृष्टि मिली– सूअरों का बाड़ा,
आदमी– खून की पौ में तैरता पड़ा पाड़ा!" [3]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'भली भॉति जानता हूँ', पृष्ठ 409
2 'हम शिल्पी सत्रास के' 'खूनी पुल पर से होकर', पृष्ठ 21
3 वही, 'धोखा हुआ', पृष्ठ 80

कवि की चेतना शोषण के विरुद्ध उसमे आक्रोश को जन्म देती है। फलत वह अपनी आकाक्षा को प्रस्तुत करता हुआ कहता है–

"न चाहिये शरबत, टोस्ट, मक्खन, अंगूर, आड़ू,
कबीर की सखियाँ गाऊँ, मारूँ दुनिया के मुँह पर झाड़ू,
कोई तीस मारखाँ समझे अपने को तो पछाड़ूँ।
खाऊँ मेहनत–पसीने की अपनी दाल–रोटी,
पर पीड़क, अन्यायी–आततायी की काटूँ बोटी–बोटी।" [1]

कवि को स्पष्ट आभास होने लगा है कि अब समय वृक्ष की डाली काटने का नही अपितु वृक्ष को जड़ से उखाड फैंकने का है जिसके बिना दूषित वातावरण का निदान सम्भव नही। शोषण, उत्पीड़न, दमन–चक्र से पिसते हुए समाज को इसी तरह उबारा जा सकता है–

"मचने दो क्रान्तियाँ।
भूचाल लाओ, ठोकरे मारों,
अन्याय के विरुद्ध आवाजें लगाओं,
आकाश में दरारें डाल दो,
आज ध्वंस के लिए मेरी पूरी स्वीकृति है।
उड़ने दो पत्ते और टूटने दो डालियाँ,
चरमराने दो तने, उन्मूलित होने दो जड़ें–
तमोमयी सत्ता की, व्यवस्था की,
ध्वंस के लिए आज मेरी पूरी स्वीकृति है–
यह लो मेरे हस्ताक्षर।" [2]

शोषितों और उत्पीडितों के प्रति सहानुभूति–प्रदर्शन के साथ ही कवि ने क्रान्ति के स्वर भी गूजायित किए है–

"क्रान्ति के खेलूँ सुन्दर खेल,
शीतल, वर्षा हिम, पाला झेल,
पर्व है नव यौवन का आज, खेल लूँ मैं भी अपनी फाग।
जाग, मेरे जीवन की आग।" [3]

आधुनिक जीवन के संत्रास से त्रस्त और क्षुब्ध होकर जिस प्रकार गजानन माधव 'मुक्तिबोध' ने अपनी रचनाओं में उसके प्रति अपने अंतस् के आक्रोश की सार्थक अभिव्यक्ति कर है उसी प्रकार 'तरुण' की यह रचना इसी तथ्य को प्रदर्शित करती है–

"हम जीवितों की तरह कभी जिए ही नहीं,
हमें बलात् जिलाया गया।
बात हमारे गले कुछ उतरी ही नहीं,
बाँस की नाल से, जबरदस्ती,
हमें सब कुछ बना–बनाया पिलाया गया।

---

1 'तरुण काव्य ग्रन्थावली' 'अपनी ही मस्ती', पृष्ठ 403
2 'ऑधी और चॉदनी' 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 28
3 'हिमाचला' 'जाग, मेरे जीवन की आग', पृष्ठ 36

मोती की आब–से हम कभी अपनी हँसी हँसे ही नहीं

हमें गुदगुदी करके हँसाया गया।" [1]

कवि मनुष्य की नियति को सोच–सोच कर आर्द्र हो गया है। जीवन–पर्यन्त वह एक बनी–बनाई अनी पर मशीन के पुर्जे की भाँति घूमता रहता है, उसे तो वस्तुतः बलपूर्वक जीवित रखा जाता है, स्वयं उसमे जीवन नही होता। मनुष्य की इस दयनीय अवस्था का यथार्थ चित्रण 'आत्मकथा' शीर्षक कविता मे हुआ है–

"एक मशीन के पुर्जे की तरह–
दाएँ और बाएँ, आगे और पीछे,
ऊपर और नीचे,
एक बनी बनाई अनी पर हम घूमते रहे,
पीठ पर जो चाबुक पड़ा–
उसे हम चूमते रहे!" [2]

'अँधेरा', 'हम जीते तो है', 'आदमी', 'आदमी?', 'नाखून– भाँत–भाँत के', 'मानव', 'नवमानव', 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' आदि अनेकानेक रचनाएँ आधुनिक जीवन–बोध से अनुरजित है। मानव की जिन्दगी पर कवि की बेबाक टिप्पणी है–

"आज मैं किस वज्र का, लाऊँ प्रखर हथियार–
तोड़कर सब बर्फ, धरती को करूँ निर्भार।
किस प्रलय के सूर्य को लाऊँ मना कर आज–
तप्त जिसकी तेज किरणों से विकट हिमराज–" [3]

कवि चिंतित है कि मनुष्य का जीवन बर्फ की चट्टान जैसा हो गया है, जिसमे उसका उल्लास और सगीत दबकर रह गया है। कवि किसी वज्र के प्रखर शस्त्र से अथवा सूर्य की प्रखर किरणों से उस चट्टान को काटना या पिघलाना चाहता है, ताकि मनुष्य को उसके गीत, उसकी रोमाच, उसकी आभा, उसकी मुस्कान फिर से प्राप्त हो सके–

"मैं मनुज को दूँ सुनहले गीत, तोड़े, तान,
हो गई है जिन्दगी अब बर्फ की चट्टान–
हाय, दबकर रह गया इसमें मनुज का गान।" [4]

<u>श्री रामकुमार शर्मा</u> ने 'आँधी और चाँदनी' के सन्दर्भ मे अपने विचार व्यक्त किये हैं– *"इस काव्य–कृति में कवि की संवेदना के साथ युग–संत्रास किंचित सघन रूप में आकर जुड़ा। बदलते हुए सामाजिक सन्दर्भ तथा टूटते हुए जीवन–मूल्यों की इस ऊहोपाह में आज संत्रास ही मानव की नियति बनकर रह गया है। पूरी मानव–जाति इस संत्रास से आक्रान्त है तो कविता में यह अधिक सघनता के साथ क्यों न प्रतिबिम्बित होता। ऐसा लगता है कि डॉ० 'तरुण' ने व्यष्टि स्तर पर इस संत्रास को कदम–कदम पर भोगा है। तभी तो कवि की चेतना से प्रतिबिम्बित होकर यह काव्य–निर्झर नैसर्गिक रूप से निसृत हुआ होगा जो कि अपनी मूल प्रकृति में समष्टि का ही संत्रास है।"* [12]

'आँधी और चाँदनी' को भूमिका में कवि ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है– *"इस रचना में मेरे अस्तित्व*

---

1 'आँधी और चाँदनी' 'आत्मकथा', पृष्ठ 53
2 वही, 'आत्मकथा', पृष्ठ 54
3 वही, 'बर्फ की चट्टान', पृष्ठ 69
4 वही, 'बर्फ की चट्टान', पृष्ठ 69

का समस्त कटुतम और मधुरतम, और इन दो सीमान्तों के बीच पड़ने वाला सारा आत्मद्रव समाविष्ट है। इस दृष्टि से यह रचना सम्भवतः मेरी काव्य–चेतना के प्रायः सभी प्रवाहों, उर्मियों, स्पन्दनों, अन्तरालों व आयामों का अद्यतन प्रतिनिधित्व करती हुई जान पड़ सके।" [13]

'प्रकृति की गोद में' एक लम्बी कविता में 'तरुण' को एक वृद्ध किसान के अर्धनग्न ककाल–गात्र की ऑखों में युग–युग का दुखमय लेखा प्रत्यक्ष दिखाई देता है। गगा की बाढ से सब फसल नष्ट हो गई परन्तु फिर भी जमीदार व सरकार – दोनो भारी करो की मांग करते है। 'सावन' नामक कविता मे कृषको के मन की पीडा भी कवि को साफ दिखाई दे रही है–

"खेत पकेंगे अहा सुनहले, भर जायेगें सब खलिहान,
अब की बार महाजन का ऋण चुकवा देगा ही भगवान!" [1]

कवि को लगता है कि अम्बर के तारे भी मानव की विवशता पर करुणा से सिहर–सिहर उठते हैं। मुक्त अम्बर में जगमगाते सितारे भी मौन संकेतों के द्वारा मानो यही वार्तालाप करते है कि नीचे पृथ्वी पर कैसे प्राणी रहते हैं, जो व्यथा का भार ढोते हुए बेबस है–

"सोच मानवों की पीड़ा को,
और नियति की कटु क्रीड़ा को,
मैं सिहर–सिहर उठते हैं वे करुणा के मारे!
चमक रहे अम्बर में तारे!" [2]

यह पीडा सिर्फ एक ही कृषक की न होकर समस्त भारतीय कृषको की है। 'कश्मीर की घाटी मे' शीर्षक कविता में कवि कश्मीर घाटी के प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होने के साथ–साथ वहॉ के निवासियों की दीन अवस्था को देखकर व्यथित भी हो जाता है। अभावग्रस्त, श्रम–हारे, बाल–युवा–वृद्ध–सब जर्जर तन कुण्ठित मन और निर्धन है। एक ओर प्रकृति का स्वर्णिम सौन्दर्य और दूसरी ओर मानव की ऐसी दुर्दशा– यह हृदय–बेधक विरोधाभास कवि की चेतना को अत्यन्त तीव्रता के साथ झकझोरता है–

"चिर अभाव–मारे, श्रम–हारे,
तरुण, वृद्ध, बालक बेचारे!
हैं तुषार–हत कमलिनियों–सी
कामिनियाँ लगती खोये– श्री।" [3]

दीन, दलित व पीड़ित मानवता के प्रति 'तरुण' के हृदय की पीडा व करुणा के अनेक मर्मस्पर्शी चित्रों से 'तरुण' का काव्य खूब भरा पड़ा है। 'माटी के घर' नामक कविता मे ग्रामों मे अविद्या व निर्धनता का प्रसार है। ग्राम तो इस भूमि पर अस्थि–पिंजर से ही लगते हैं, इनके भीतर रक्त का सचार भी कभी हो सकेगा– यह अनिश्चित है। इन दीन ग्रामवासियों का कोई आश्रय नहीं–

"युग–युग से शोषित ये गाँवों के नारी–नर,
हैं अर्द्ध–नग्न, चिर मूढ़, क्षुधित, ऋण से जर्जर!
ये जीवन के हित केवल ईश्वर पर निर्भर,
नीचे इनके धरती, उपर सूना अम्बर!" [4]

' खेत की ओर' शीर्षक कविता में अभावग्रस्त ग्रामीणा तथा उसके बूढे कृषक–पति की शारीरिक और आर्थिक स्थिति

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'सावन', पृष्ठ 185.
2 वही, 'चमक रहे अम्बर मे तारे', पृष्ठ 139
3 'ऑंधी और चॉंदनी' 'कश्मीर की घाटी मे', पृष्ठ 129
4 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'माटी के घर', पृष्ठ 214

का चित्रण अत्यन्त सरल और स्वाभाविक रूप से हुआ है। अब न तो उन्हें जीवन से कोई अनुराग ही रहा है और न ही अन्यायी के प्रति विद्रोह की भावना ही उनके मन में शेष बची है। शोषण, अन्याय व अत्याचार को वे अपनी नियति मान चुके है–

"लू चलती है, धूप कड़ी है,
काया से कुछ मोह नहीं है!
जीवन से अनुराग नहीं अब,
अन्यायी से द्रोह नहीं है!" [1]

गॉव मे ग्राम–विरहिणियों की पीडा का कवि को विशेष अनुभव है। एकाकी घर के सूने ऑगन में ज्वर से पीडित बच्चे की चिन्ता के साथ तुलसी के नीचे दीपक रखकर कुलदेवी की क्षेम मनाती हुई ग्राम–विरहिणियॉ भाव पूरित ह्रदयों से ऑखें बन्द करके अपने पतियों के सकुशल घर लौट आने की कामना करती है–

"एकाकी घर, सूना आँगन!
ज्वर से पीड़ित बच्चे का तन!" [2]

प्रो0 विश्वम्भर 'अरुण' के शब्द इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं– ***"'तरुण' मानवता पर छाई अँधियारी को सतत् दूर करने के आकांक्षी रहे हैं।"*** [14]

'मानव' शीर्षक कविता में भी कवि की यह चिन्ता स्पष्ट दिखाई पडती हैं। प्रकृति का यह सलोना, लाडला, निरा अबोध बिटवा– मानव आज सूखी घास के ढेर पर खेल रहा है, जिसके हाथ में ब्लेड और माचिस है तथा मिट्टी के तेल का डिब्बा साथ रखा है। कलबले बोल बोलता हुआ माचिस के मसाले पर सलाई रखकर रगडने को तैयार बैठा है–

"अब लो–
सूखी घास के ढेर में खेलने लगा–
हाथ में लिए
ब्लेड और माचिस!
किरोसिन का डिब्बा रखा है!
कलबले बोल बोलता–सा
हाथ उठाकर कहता है– 'माऊँगा' (मारूँगा)!
घुड़की देता–सा–
सलाई, माचिस के मसाले पर रख रगड़ने को तैयार!
– बच्चा है!" [3]

आज के आधुनिक वैज्ञानिक विकास के फलस्वरूप मनुष्य भीतर से कितना खोखला व रिक्त हो गया है, उसकी यह दयनीय स्थिति कवि से देखी नहीं जाती। हमारी सभ्यता आज शिव मन्दिर का घडा हो रही है, जिसका सारा अमूल्य रस बहा जा रहा है–

"हम सब साधन–सम्पन्न, किन्तु मन चिर–दरिद्र!
रे, कहाँ रहेगा तेल, दीप के तले छिद्र!
हो रही सभ्यता आज घड़ा शिव–मन्दिर का,

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' . 'खेत की ओर', पृष्ठ 215
2 वही, 'ग्राम–विरहिणी दीप जलाती', पृष्ठ 219
3 'हम शिल्पी सत्रास के' 'मानव', पृष्ठ 66

रे, बूँद–बूँद कर, बहा जा रहा रस अपार!" [1]

समाज मे व्याप्त आक्रोश, असंतोष और आवेश ने कवि को विद्रोह की प्रेरणा दी है। फलतः कवि के स्वर से क्रान्ति की धारा फूट निकली है–

"उठने दो काली–पीली आँधियाँ,
गिरने दो गाज और ढहने दो शिखर,
सजे मंचों के नेपथ्यों को फोड़ दो,
उनका शासन अब असह्य हो उठा है। [2]

अणु बम से जलने को तैयार बैठे ससार को कवि पुकार–पुकार कर कह रहा है कि इसका शीतल उपचार करो, अन्यथा मानव–जाति का अस्तित्व ही भूमि पर नही रहेगा–

"प्यार करो, प्यार करो!
अणुबम से जलता जग, शीतल उपचार करो!
प्यार करो!" [3]

डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी 'तरुण' की पीडाओं को आत्मसात् करते हुए कहते है– *"ऐसे रचनाकार विरल होते हैं जिनमें व्यक्तित्व और कृतित्व की एकरूपता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। जब 'जिन्दगी में कविता और कविता में जिन्दगी' ढल जाए तब समझना चाहिये कि कवि–कर्म अपनी पूरी उठान पर पहुँच रहा है। जब रचना किन्ही मूल्यों से जुड़ जाती है तब वह सार्थकता पाती है। मनुष्य को आस्था–केन्द्र बनाकर चलने वाली गर्जना निश्चित ही मूल्यों से जुड़ी होती है और जीवन को ऊर्जा प्रदान करती है। प्राणवान रचना का रचयिता सबसे पहले स्वयं ऊर्जावान और आस्थामय संघर्ष–शीलता का पर्याय होता है। जब तक भीतर की उमंगें सर्जनात्मक पहल करती हुई जीवन में हलचल मचाने वाली पीड़ा से संपृक्त नहीं होती तब तक सशक्त रचना जन्म नहीं ले सकती। यह पीड़ा व्यक्तिगत नहीं, सार्वजनिक होनी चाहिए। यदि व्यक्तिगत पीड़ा को जन–जन की पीड़ा न बनाया गया अथवा जन–जन की पीड़ा को व्यक्तिगत दर्द की संवेदनात्मक परिधि में नहीं लाया गया तो रचना की जमीन कमजोर कर दी जायेगी और अपने समय से साक्षात्कार करने का माद्दा रचनाकार में दिखलाई नहीं देगा। एक सार्थक सृजन केवल जीवन और जगत की मीमांसा ही प्रस्तुत नहीं करता और न तमाम् चीजों को यथावत् स्वीकार करके चलता है बल्कि अपने समय से टकराता, जूझता और मुठभेड़ करता है। गोया, केवल स्वीकृति ही नहीं, निषेध का स्वर भी उसमें प्रबल होता है। एक उच्चकोटि की रचना कई बार यह अहसास देती है कि निषेध और अस्वीकृति के बीच से कोई नई स्वीकृति जन्म ले रही है जो मूल्यों के साथ युग की अनुरूपता की प्रतीति हमें कराती है।"* [15]

डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी आगे कहते हैं–*"कवि रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' की काव्य सम्पन्नता के बारे में यह कहना बहुत औचित्यपूर्ण/तर्कसंगत होगा कि उन्होनें जीवन–मूल्यों को परखा है, जिन्दगी को नये रचाव की परिभाषा दी है। उनका ऊर्जा–सम्पन्न प्राणवान व्यक्तित्व निराशाओं के निविड़ अंधकार में भी रोशनी की तलाश करता हुआ साधना–पथ का अनुगामी है। उनका संवेदनात्मक और वैचारिक धरातल उन्हे जन–जन के जीवन से जोड़ता हुआ व्यष्टि और समष्टि की कोई दीवार खड़ी नहीं होने देता। केदार नाथ सिंह के शब्दों में 'साँसों की एक छोटी–सी डिबिया में यही ब्रह्मशु का समाना है'*

1 'आँधी और चाँदनी' · 'दीप के तले छिद्र', पृष्ठ 136
2 वही, 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 27
3 वही, 'प्यार करो', पृष्ठ 70

यानि वृहत्तर जीवन सन्दर्भों से जुड़कर अपनी सार्थकता तलाशना।" [16]

'तरुण' ने जीवन के संघर्षों को झेला है, उनका सामना किया है, उन्हे आत्मसात् करके अपने गीतो में ढाला है। ये गीत भले ही 'तरुण' की स्वय की अनुभूति से युक्त है परन्तु क्या ऐसा नहीं लगता कि दु:ख, यह पीडा, यह संत्रास, यह कष्ट आज हम भी भोग रहे है, जीवन की कडवाहटों को सहन कर रहे हैं? इतना ही नही यदि यह समग्रता से विचार करे तो पाते हैं कि केवल हम ही नहीं सम्पूर्ण मानव समाज इन दु:ख कष्ट, संताप, निराशा की अव्यक्त पीडा को भोग रहा है। 'तरुण' का काव्य वास्तव में व्यष्टि स्तर से ऊपर उठ कर समष्टि स्तर तक की पीड़ाओ को दर्शाने में सक्षम है।

आत्मसन्निहिति

'तरुण' का सम्पूर्ण जीवन संघर्षों में बीता है जीवन के मधुरतम व कटुतम दोनों सीमान्तो के सभी आयाम– जैसे हास– अश्रु, सुख–दुःख, उल्लास–विषाद, हर्ष–शोक, प्रेम–वितृष्णा, अन्धकार–प्रकाश, गायन–रोदन इत्यादि को करीब से सहा–भोगा है तभी उनके काव्य में वह साक्षात् रूप में सामने नजर आते है। 'तरुण' निर्भय होकर विश्व मे अजेय रहकर जीवन मे परम श्रेय को खोजना चाहता है। अग्निबाण बनकर ससार के सारे संसार में व्याप्त अंधकार को दूर करना चाहता है। क्षण–भंगुर जग में मृत्युजय बनकर ही वह अपनी अगाध महिमा मे गर्वोन्नत होकर सागर की भॉति लहरा–गहरा सकता है–

"मैं हो स्वतन्त्र विचरूँ भू पर, निर्भीक, मरण का तज कर भय,
ले शक्ति–तरंगों से स्पन्दित सुदृढ़, बलिष्ठतम वज्र–हृदय!
नस–नस में ले पौरुष अपार मैं जिऊँ विश्व में रह अजेय,
झंझा–सा दुर्दमनीय बना, खोजूँ जीवन का परम श्रेय!
बन पवन–पुत्र–सा, वज्र–अंग, हो विज्जु–वेग से प्राणवान्,
मैं नष्ट–भ्रष्ट कर दूँ जग का सारा तम–बन कर अग्नि–बाण!
मैं मृत्युंजय बन मृत जग को जागृत कर दूँ, कर शंख–नाद,
नित गर्वोन्नत–सा लहराऊँ अपनी ही महिमा में अगाध!" [1]

'तरुण' ने काव्य में स्वयं के सम्मिलित होने का विचार 'तरुण काव्य–ग्रन्थावली' के 'कुछ अपनी बात' में रखते हुए कहा है– ***"मैं अपने–किए पर सहज रूप से आत्मिक शक्ति और आत्म–तोष और यह मेरा अधिकार है! प्राप्त करने से अपने कुछ शक्ति गर्भ कण बटोर सकूँ:***

– ***कविता से मैंने जीवन में अपने मन की निविड़ घुंडी खोली है,***

– ***जीवन का विष पचाने की गहरी शक्ति मैंने पायी है,***

– ***विराट् प्रकृति, जीवन, व्यक्ति–मन तथा व्यापक जन समाज के साथ, अपनी सीमा में, आत्मविस्तार के अनुभव–संग्रह का अभ्यास भी किया है। 'आत्म–साक्षात्कार' जैसे दार्शनिक कोटि के भारी भरकम शब्द का उपयोग न करके मैं अपने ही एक गीत की अन्तिम पंक्तियों के माध्यम से अनी गहन सर्जनात्मक जीवन–कामना को व्यक्त करता हूँ–***

"एक बार बस ऐसा गा लूँ–
अपने को, अपने में पा लूँ!"

सहज मानवीय सीमाओं में या मानवीय भूमि पर रहते हुए मेरी चेतना यदि इस जीवन में इतनी भी फलवती हो जावे तो मेरे लिए और क्या पाना रह गया! अपने सर्जन का मेरा परम पुरुषार्थ सम्भवतः यही हो, ऐसा ही हो, इतना ही हो! आकाश के और कौन–से तारे मैं तोडूँगा?" [17]

'तरुण' के जीवन में अनेक झंझावात आए हैं जिन्होंने अपने प्रलयंकर प्रवेग से उसको मूल से ही उखाड फेकने की चुनौती दी है। परन्तु, उसने इन चुनौतियो का सामना पूरे दम–खम से किया है। निराला की "मेरा अन्तर वज्र–कठोर, देना जी भर कर झकझोर" वाली ललकार भरी वाणी में कवि ने संघर्षों का स्वागत किया है। जीवन में जय पाने के लिए उसका एक ही मूल–मन्त्र रहा है– "संघर्ष कर, संघर्ष कर!" संघर्ष जितना ही प्रबल होता है, उसकी जिजीविषा उतनी ही दुर्द्धर्ष हो जाती है–

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'शक्ति का सौन्दर्य–स्वप्न', पृष्ठ 204–205

"मैं! और मानूँ, हार ?
जन्म से जो ऊधमी हो–
मौत के जबड़े पकड़ कर
खींच उसके दाँत सारे,
जिन्दगी का अर्क पीने को खड़ा तैयार!
मैं! और मानूँ, हार!" [1]

'तरुण' ने अपने जीवन में भय, सशय और संत्रास को बहुत भोगा परन्तु लौह सकल्प और अजेय मनोबल का साथ कभी नही छोड़ा। उसने जीवन के श्वेत–श्याम और कटु–मधु सभी पक्षों को पूरी समग्रता के साथ स्वीकार किया है। जीवन के प्रति ऐसी प्रबल प्रतिबद्धता कुछ ही कवियों में देखने को मिलती है–

"जीवन को मुट्ठी–बंध ठेठ हत्थे से पकड़ा
मौत को गला भींच कर जकड़ा
जीवन का मीठा–खारा, कड़वा–कसैला
तरल–गाढ़ा, अँधेरा–उजेला
आँखें खोले, मौन रह,
कंठ भींच, पैंदे तक पिया!
– मैं कस कर जिया!" [2]

'तरुण' जानते हैं कि जीवन कोई फेनिल स्वप्न नहीं वास्तविकता की कठोर चट्टान है, जिसे फूँक मार कर उडाया नहीं जा सकता, उसे तो छेनी के निरन्तर प्रहार से तिल–तिल कर काटा जा सकता है। ऐसे में जीवन–डगर पर पर चलने का 'तरुण' का अपना ही अन्दाज है–

"तबीयत रही फक्कड़ाना
रेत के टीबों पर
स्वभाव रहा– लू में भी गाना
कभी तो मैं बवण्डरों–सा उठा
कभी धनिये–करौंदों की बाड़ी से
हवा के झोंके–सा हो निकला!
बंधु! बस, कुछ ऐसा ही रहा
अपना तो जीवन–डगर पर चलने का सिलसिला!" [3]

जीवन की प्रतिकूलताओं के अपने अनुकूल बनाने के लिए अपने अन्तस् की आग को प्रज्ज्वलित करने का आह्वान करता है। वह धारा के अनुकूल न बहकर उसके प्रतिकूल बहना चाहता है तभी तो कवि को सन्तोष मिलेगा–

"लिए कण्ठों में कोमल गीत
चलूँ कुछ धारा के विपरीत।" [4]

सरल, सीधी रेखा–सा जीवन 'तरुण' की ऊर्जा, शक्ति, पौरुष का अपमान है। उसे ऐसा जीवन स्वीकार नहीं जो

---

1 'आँधी और चाँदनी' 'जीवन तीन स्थितियाँ', पृष्ठ 29
2 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'कस कर जिया', पृष्ठ 117
3 वही, 'सिलसिला', पृष्ठ 115
4 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'मुझको एकाकी गाने दो', पृष्ठ 144

उसकी कर्मठता को लजाता हो। इससे 'तरुण' को अपनी कर्तव्यशक्ति का, धीरता का, सहनशीलता का, कर्म–कौशल का पता नहीं चलता। उसे तो द्वन्द्वमय जीवन सम्पूर्ण 'अस्वीकार' के साथ स्वीकार है–

"जीवन है स्वीकार न मुझको सीधी–खिँची लकीर–सा,
चाहे वह झंकार–भरा नूतन सितार का तार हो!
गोलाकार क्षितिज–रेखा–सा भी जीवन लूँगा नहीं–
चाहे वह वन–वल्लरियों–सा सुन्दर घूँघरदार हो!
जीवन लूँगा मैं तो आँधी, नदी या तूफ़ान–सा,
जिसमें तड़पन हो, ज्वाला हो, गुंजन, मेघ–मलार हो!" [1]

'तरुण' की तरुणाई केवल क्रान्ति, विद्रोह और आक्रोश के पाँवों ही नहीं चलती, प्रणय–रोमाच मे चहकने–महकने का अवसर भी खोजती रहती है। आग से भी खेलती है और प्रणय–प्रीति की मनोरम रागिनी भी अलापती है। 'तरुण' का जीवन–प्रवाह उन दोनों तटो को छूता हुआ बहता है, बल्कि एक से दूसरे को सहेजता है–

"वह करेगा प्रीत, केवल वह करेगा प्रीत,
आग के पथ पर सुरीले गा सके जो गीत!" [2]

'तरुण' ने अपने जीवन मे अनेक उतार–चढाव देखे, मन–प्राण को बेधने वाले बाणों को सहा, बाहरी द्वन्द्व के चपेट मे आये, किन्तु उनका मन वैसा ही निद्वन्द्व बना रहा। 'खूनी पुल पर से होकर' जीवन–यात्रा करते हुए उसने हड्डियों में पसीना लाने वाले गहरे संत्रास और भय का अनुभव किया पर संघर्ष और प्रतिरोध नही मिटा। इस अनुभूति को कवि अपने शब्दों में स्पष्ट करता है–

"कैंचियों, जंजीरों व छुरे–चाकुओं से बने
एक झूलते विशाल तंग पुल पर से
चले जा रहे हैं हम सब लोग
x x x x x
पहाड़ियाँ, जंगल और अँधेरा!
और भीतर है बस ज्वलन्त जिजीविषा! जिजीविषा!!
प्यास है– पानी कहाँ!
अँधेरा – साँय–साँय,
दिशाएँ – भाँय–भायँ!
और, नीचे, हमारे वही जा रही है–
मौत की एक ठण्डी काली नदी!" [3]

'तरुण' इस भयावह दृश्य के बीच मौत को आहट पाकर भी अपनी हठ को नही छोड़ता, अपने लक्ष्य को नही त्यागता। जबकि वह आगे बढ़ कर ध्वंस की स्वीकृति–पत्र पर अपने हस्ताक्षर कर देता है। क्रान्ति, विद्रोह और आक्रोश से उसका स्वर गूँज उठता है–

"क्रान्ति की प्रचण्ड ठोकर से
तोड़ दो व्यवस्था के इस बर्फ की चट्टान को–

1 'आँधी और चाँदनी' 'जीवन तीन स्थितियाँ', पृष्ठ 29
2 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रेम', पृष्ठ 279
3 'हम शिल्पी सत्रास के' 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए', पृष्ठ 21

जिसमें कि मनुष्यता का
सनातन स्वर चिर बन्दी पड़ा है– लुंठित!" [1]

अत.

"ध्वंस के लिए आज मेरी पूरी स्वीकृति है–
यह लो मेरे हस्ताक्षर" [2]

कवि की सघर्षशीलता उसकी मस्ती का तराना बन कर गूँज उठती है, तो कभी उसकी मनुष्यता उससे आग्रह करती है–

"जीवन घड़ी निर्माण की,
आदान और प्रदान की,
पावन मनोहर वेदिका–
यह त्याग की, बलिदान की!
इस पुण्य पथ पर बढ़ अभय,
अपने विसर्जित प्राण कर!
निर्माण कर, निर्माण कर!" [3]

कभी कवि ससार की पीडा से त्रस्त होकर इस निर्मम ससार से दूर जाना चाहता है–

"वहाँ चलो रे, जहाँ कभी भी हृदय, हृदय को नहीं छलें,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर–कहीं कुछ देर चलें!" [4]

'तरुण' मान लेते है कि 'जग–ताप मे जलता हुआ मानव–हृदय' ही 'मेरी प्राप्ति' है क्योंकि उन्होंने सदैव 'छाया–रहित अविराम पथ' पर संघर्ष किया है और प्रलय देखा है–

"जब आँख विहगों की खुली–
पाया प्रभात प्रकाशमय!
जब आँख कलियों की खुली–
सम्मुख मिले अलि प्रेममय!
जब आँख तारों की खुली,
घर–घर मधुर दीपक जलें!
मेरे नयन जब से खुले–
मैंने सदा देखा प्रलय!" [5]

किन्तु उनका कला–बोध, उनका सौन्दर्य–प्रेम उनसे जीवन के एकांगी रूप को स्वीकार करने नही देता अपितु घोषणा करता है कि वह सजल चम्पई धूप का कवि है और साश्रु मुसकान का। जाहिर है कि 'तरुण' ने प्रकाश–अंधकार, अश्रु और मुस्कान को याने जीवन की समग्रता को देखा, समझा और परखा है–

"अब तो हूँ मैं–

---

1 'आँधी और चाँदनी' 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 27.
2 वही, 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 28
3 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'निर्माण', पृष्ठ 95
4 वही, 'मुक्ति की ओर', पृष्ठ 274
5 वही, 'मेरी प्राप्ति', पृष्ठ 142.

तहाँ—जमें सिलहटों बादलों से छनते—
शिशिर के अवसाद—करुण सूर्यास्त का कवि!" [1]

'तरुण' अपने उपनाम के अनुरूप नवशक्ति का आह्वान करते है। यह नश्वर शरीर की अनश्वर शक्ति है। जीवन की उद्दीप्त स्थिति इन शब्दो में देखिए—

"फेफड़े भर लूँ हिमालय के पवन से,
नीलिमा पी लूँ निखिल आकाश की मैं!
सिन्धु की हिल्लोल बनने, प्राण में निज—
माधुरी भर लूँ सकल मधुमास की मैं!
एक क्षण जी लूँ— मधुरतम, तृप्ति का मैं!
सरस ज्योति— लहर बनूँ, जड़ मृत्तिका मैं!" [2]

'तरुण' को जीवन के मृदु—कोमल पक्षों में उसकी आस्था ने आधुनिक विश्व की विध्वंसकारी शक्तियों से ऊपर उठाया है। कवि ने स्वय अपनी प्रतिबद्धता को उद्घोषित करते हुए लिखा है—

"मैं प्रतिश्रुत हूँ—
अपने रक्त की लाली के प्रति,
उषा की सरस गुलाली के प्रति,
धरती की ओस—जड़ी हरियाली के प्रति,
आदमी के सलोने सपने और खुशहाली के प्रति—
मैं प्रतिश्रुत हूँ।" [3]

'तरुण' ने जीवन के मूलभूत सांस्कृतिक मूल्यो मे अपनी अदम्य आस्था को बचाकर रखा है तभी तो वह विश्वास से कह उठता है—

"धूँआ, धूल, धुंध, अँधियारा—
उनका चारों ओर पसारा।
किन्तु, इसी में चमक रहा है
मेरी आशा का ध्रुवतारा!" [4]

जिस तरह एक मल्लाह ऑंधी, रात्रि, भॅंवर, तूफान के सामने डटा रहता है उसी प्रकार 'तरुण' सघर्ष—पथ पर मृत्यु को वरदान मानते हैं और सिन्धु की चुनौती स्वीकार कर मॅंझधार से मुकाबला करता है—

"जब नाव जल में छोड़ दी,
तूफान में ही मोड़ दी
दे दी चुनौती सिन्धु को
फिर पार क्या! मँझधार क्या!" [5]

किन्तु कवि ऊपरी तल पर दिखाई देने वाली इस जटिलता और इस संघर्ष के परदे के परे के रहस्य की 'खोज' में

---
1 'आँधी और चाँदनी' 'घोषणा', पृष्ठ 1
2 'तरुण—काव्य ग्रन्थावली' 'उद्दीप्त', पृष्ठ 86
3 वही, 'प्रतिश्रुत हूँ', पृष्ठ 453
4 'आँधी और चाँदनी' 'मुक्तक', पृष्ठ 92
5 'तरुण—काव्य ग्रन्थावली' 'सघर्ष—पथ पर', पृष्ठ 72

रत है। वह आस्थावान है तभी तो मानव–आत्मा का शाश्वत धन की खोज करता फिर रहा है–

"है इन्द्रजाल–सा जगत जटिल,
इसमें है कितना संघर्षण!
दारुण क्रन्दन अम्बर–व्यापी!
दुख–सुख आशा–भय, जन्म–मरण!
प्रतिपल है निष्ठुर नियति यहाँ
कर रही प्राणियों से क्रीड़ा,
मैं खोज रहा फिर भी इसमें
मानव आत्मा का शाश्वत धन!" [1]

कवि साधना के दीर्घ पथ पर विश्राम नही करना चाहता, वह तो सुन्दरता का मधुर स्वप्न ऑखों में भरकर धरती पर स्वर्ग बसाने का सतत् यत्न करता रहता है यही उसकी 'अमर टेक' है–

"तप विश्व–वेदना में निशि–दिन
जीवन का स्वर कवि गाता है,
सुन्दरता का ले स्वप्न मधुर
धरती पर स्वर्ग बसाता है।" [2]

एक सच्चे मनुष्य की तरह, एक कल्पनाशील सच्चे कवि की तरह, 'तरुण' की सारी चिन्ता का केन्द्र है, 'जीवन'। जीवन के उतार–चढाव, जीवन की उदग्रता–व्यग्रता, खींच–तान, अश्रु–हास का कच्चा चिट्ठा हमारे समक्ष रखता है–

"गिरि–पथ–सा है मेरा जीवन!
अन्ध गहनतम खड्ड भयंकर
चट्टान, कंकड़, कटु पत्थर,
चारों ओर दिखाई देते बस ये ही उस पथ पर निर्जन!
गिरि–पथ–सा है मेरा जीवन!" [3]

कवि इस जीवन की जो तस्वीर बनाता है, वह 'अधूरी बनी तस्वीर' से आगे नहीं बढ पाती। हर बार उसके हाथ से जीवन–सत्य फिसल–सा जाता है', हर बार उसका विवेक आहत मुद्रा में प्रश्न पूछ उठता है–

"मैं समझ न पाता, क्या है मानव–जीवन!
यह जीवन, मधुमय मुक्ति या कि कटु बन्धन!" [4]

पर अन्ततः विजय उसके उच्चादर्शों की, आत्मविश्वास की होती है। कवि जानता है मंगलमय उच्चादर्शों में अगर विश्वास रखा जाये तो धरती को स्वर्ग बनाने का यह सुअवसर है। यही 'तरुण' की काव्य में आत्मसन्निहति है।

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' · 'खोज', पृष्ठ 255
2 वही, 'अमर टेक', पृष्ठ 263
3 वही, 'मेरा जीवन', पृष्ठ 111
4 वही, 'जीवन मुक्ति या बन्धन', पृष्ठ 109.

गीतात्मक संवेदनाएँ

सवेदना मन की भावनात्मक दशा के आवेगों से निसृत होती है। कवि इस सवेदनशील भावों को अपने संप्रेषण शक्ति यानि गीतों की आकर्षण शक्ति से पाठक को प्रभावित कर देता है। एक सवेदनशील और सरस कवि होने के नाते 'तरुण' के अनुभूतिपरक गीत विशेष भावपूर्ण है। उनके गीतो मे वेदना, सुकुमारता एवं विगत स्मृतियों के चित्रण में तीव्रता एवं अन्तर्दृष्टि की जो गहराई है, वह आधुनिक हिन्दी काव्य–जगत में विरल है। 'तरुण' की ये रचनाएँ उदात्तता की अमित आभा से आलोकित है। इनमें सृष्टि के विविध पक्षों के रहस्योद्घाटन के साथ ही नीति–तत्त्वों को भी उजागर करती है। 'मधुभार', 'मनुहार', 'उपचार', 'प्रीत', 'कर्म भरी पीड़ा मे', 'मेरी प्राप्ति', 'वह कथा सुन क्या करोगे', 'बीती बाते मत याद दिला' जैसे मर्म–स्पर्शी गीतो में मानव–मन की मूक–वेदना सह–अनुभूति के साथ मुखरित हुई है–

"भूमि में प्राचीन खण्डहर–
सो रहे चुपचाप दबकर!
खोद कर क्यों देखते हो, तुम अभी आहें भरोगें!
वह कथा सुन क्या करोगे" [1]

अनुभूति का एक अन्य उदाहरण देखिये–

"कण–कण से मेरी प्रीत हुई,
पीड़ा, जीवन–संगीत हुई,
कड़वी प्याली पी लेने दे– सादर अपने सिर–आँखों पर!
इस पीड़ा का उपचार न कर" [2]

'तरुण' की अन्तरंग अनुभूति का दर्द अमृतमय होकर विशद विभूति बन गया है। उसके हृदय में असीम–प्यार का ज्वार उमड़कर सृष्टि के कण–कण से तादात्म्य स्थापित करना चाहता है। तभी तो कवि वासन्ती कलियों विहान के विहंगों, गुंजार करते भ्रमरों, उद्दात्त लहरों एवं प्रज्ज्वलित दीप–शिखा से क्रमशः मादक मुस्कान, जीवन–गान, कॉटों में मधु–पान, पराजित होने पर भी गाने की सुन्दर बान और औरों के लिए अपने जीवन का बलिदान करने का सहज गुण सीखना चाहता है। 'उपचार' नामक कविता में कवि ने अनुभूत सत्य की अनेक उक्तियो का सुरुचिपूर्ण प्रयोग करते हुए अपनी नीतिज्ञता को उजागर किया है–

"रोने से तो दुख दूर नहीं होने का
आँसू से पत्थर चूर नहीं होने का,
जीवन भर चाहे तुम कुकुंम से पूजो–
काला काजल, सिन्दूर नहीं होने का!" [3]

इसी प्रकार 'तरुण' के प्रणय–गीतो मे हृदय की गहराइयों से निकली हुई सुमधुर भावो की अनुपम अभिव्यक्ति हुई है। कवि की स्पष्ट मान्यता है–

"वह करेगा प्रीत, केवल वह करेगा प्रीत,

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'वह कथा सुन क्या करोगे', पृष्ठ 136
2 वही, 'इस पीड़ा का उपचार न कर', पृष्ठ 136
3 वही, 'उपचार', पृष्ठ 60

आग के पथ पर सुरीले गा सके जो गीत!" [1]

एक प्रणय–निशा की मधुर स्मृति में कवि की संवदेना स्निग्ध शब्दों मे अवलोकनीय है–

"उड़ स्वप्न के क्षण वे गये,
चिर वेदनाएँ दे गये,
मैं सत्य समझा था उसे, रे स्वप्न की जो बात थी!
कितनी मधुर वह रात थी!
सुख के अमर वे अल्प क्षण–
आगे सदा को शूल बन,
कसका करेगें रात–दिन, यह बात किसको ज्ञात थी!
कितनी मधुर वह रात थी!" [2]

'तरुण' को प्रकृति से गहरा लगाव है। मानव–मन के साथ प्रकृति के सहज आकर्षण एवं चिर साहचर्य की सुन्दर झॉकी 'प्रकृति : जीवन का आधार' में अभिव्यस्त हुई है। निम्नलिखित पंक्तियों मे सत्य एवं सौन्दर्य की समन्वित छटा प्रस्तुत है–

"यदि धरती पर रंग–बिरंगे ये मुसकाते फूल न होते,
हरियाली से लदे, चमकती सरिताओं के कूल न होते!
चाँद सितारों वाला नीला, मुक्त महा आकाश न होता,
मधुर पवन के मन्द झँकोरे, सुखदायी अनुकूल न होते–
तो हम मृग–जैसे भोले मानव, ले अपने व्याकुल मन रीते–
घोर मरुस्थल–से इस जग में, एक घड़ी भी कैसे जीते !" [3]

'मरु का चन्द्रोदय', 'लो, निशा अब जा रही है' 'दूर काले बादलो मे', 'यह चॉद जिधर से आता है', 'दो चिडियॉ', 'सावन' आदि अनेक रचनाऍ पाठक के हृदय को झंकृत कर देती है क्योकि कवि को प्रकृति का बाह्य रूप विशेष रूप से प्रीतिकर है। धरती, आकाश, पक्षी, पर्वत, झरना, उपत्यकाऍ, सरिता, तट, सागर, लहरें, चन्द्रमा, चॉदनी, आकाश, तारे, रात्रि, उषा, खेत, हरियाली सभी के जीवन्त चित्र 'तरुण' के काव्य मे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। ये सभी 'तरुण' की गीतात्मक सवेदना को उजागर करते हैं।

आधुनिक हिन्दी काव्य–साहित्य के आधुनिकतावादी विरस ऋतु में जिस कवि की रचना–धर्मिता मे सवेदना, सौन्दर्य और आत्मीयता का वासन्ती संसार सुरक्षित रहा– वह रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' ही है। कविता की धरती पर कुण्ठा, संत्रास, और जुगुप्सा के पथरीले फैलाव के बीच जिस कवि के सृजन मे जिजीविषा का उद्दाम निर्झर फूटता रहा वह निःसन्देह 'तरुण' का सृजन–ससार ही है। 'तरुण' का काव्य–साहित्य, छायावादी महाकाव्यत्व के उत्तराधिकार तथा उसकी सवेदनात्मक–कलात्मक समृद्धि का सुखद–अप्रतिम फैलाव है। अपनी मौलिक रचनात्मक विचारणा एव विचारशीलता के साथ अपनी निर्विकल्प मौलिकता–विशिष्टता वाली नई आधुनिक कविताओं के कारण 'तरुण' कविता की विलुप्त पहचान और परिभाषा के प्रत्यभिज्ञान के कवि है– यही कारण है कि उनके रचना–संसार से अपरिचित पाठक जब पहली बार उनकी कविताऍ पढता है तो आश्चर्य से भर उठता है। समकालीन अन्य कवियों की तुलना मे उनकी कविताऍ किसी विशेषज्ञ कवि की विशिष्ट रचनात्मक उपलब्धियॉ प्रतीत होती है। 'तरुण' के कवि और काव्य की इस विशेषज्ञ प्रभाविता की रहस्य–कुंजी उनके गम्भीर और व्यापक अध्ययन तथा मौलिक अनुसधान, निष्कर्ष और चिन्तन–मनन से पुष्ट उस प्रशिक्षित और परिष्कृत

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रेम', पृष्ठ 279
2 वही, 'कितनी मधुर वह रात थी', पृष्ठ 139
3 वही, 'प्रकृति जीवन का आधार', पृष्ठ 169

काव्य–बोध में है जो सिर्फ किसी विचारक रचनाकार की नैसर्गिक प्रतिमा में ही उपलब्ध होती है।

'तरुण' साहित्य के वैकासिक सृजन की विशिष्टता यह है कि उनकी प्रतिमा कही से भी कविता के नाम पर भाषा की तान्त्रिक रचनावादी न होकर मनुष्य के आत्मिक सौन्दर्य, आत्मिक रचाव, आत्मिक पुनर्निर्माण तथा मूल्य और सवेदनायुक्त मनुष्य की खोज में गतिशील है। उनकी रचनात्मक चिन्ता सिर्फ भाषा एवं कला की ही रचनात्मक चिन्ता नही, सम्पूर्ण मानवता के पुनर्निर्माण की चिन्ता है। अन्तहीन यातना के बावजूद उनका कवि ऊब एव निराशा का कवि नही सृजनात्मक प्रतीक्षा का है, प्रकृति–मानवीय निर्विकारिता के आह्वान का है–

"हाँ, अब खुलेगा ऋचाओं का सौन्दर्य,
अब प्रकटेगा धरती का कुंआरा सौकुमार्य,
चन्द्रोदय–सा उदित होगा–
अब मानव का प्रथम मूल
आदिम स्वर!" [1]

'तरुण'–काव्य का वैशिष्ट्य यह है कि मानव के सुखद भविष्य के प्रति उसकी आस्था का हर स्वर यथार्थ के ठोस नग्न पहचान और बोध की चट्टानी पृष्ठभूमि से फूटता है–

"कुत्ते के कान–से हो गये हैं मुड़कर–
पुरानी जर्जर मान्यताओं के खरखराते पत्ते!
झड़ने दो इन्हें–
फूटने दो नये रक्ताभ पल्लव!
पृथ्वी पर उतारो रे–
अब नया मानव!" [2]

वस्तुत "हो गई है जिन्दगी अब बर्फ की चट्टान । हाय, दबकर रह गया इसमें मनुज का गान!" की निरावृत चेतना ही उनकी रचनात्मकता का युग–सापेक्ष प्रस्थान–बिन्दु है। कवि 'तरुण' की दृष्टि मे विकार का विकिरण– केन्द्र अपलीला–स्वयंभू मनुष्य ही है। फिर भी वह संभावनाओं एवं आस्थाओं का आत्मकल्पक केन्द्र भी है। उसी के सद्संकल्पों एवं प्रातिभ अंकुरण से विकसेगी नई मानव–सृष्टि, सम्भवत इसीलिए कवि 'तरुण' का मनुष्य क्रुरकर्मा एवं नृशंस होते हुए भी दया और करुणा का पात्र है। इसलिए कि अपमनुष्यता का वर्तमान कारण, परिणाम और प्रभावित स्वय मनुष्य ही है। यदि वह अपराधो का स्रष्टा है तो न्याय का भी, इसलिए 'तरुण'–काव्य के केन्द्र में प्रतिष्ठित, आत्मलोचन और पुर्नरचना की चिन्ताओ से घिरे हुए मनुष्य की से बड़ी आशा है। उसके अस्तित्व का सम्पूर्ण वृत्त आशा एवं विश्वास की सबल रेखाओं से निर्मित हुआ है– रचनात्मक ऊर्जा के प्रकाश से आवृत ऐसा मनुष्य जिसका अस्तित्व गतिशील चक्र की भाँति जडता और शून्य के ठहरे हुए दिक् को रौदता हुआ संभावनाओं से युक्त काल में प्रवेश कर जाता है। कहना न होगा कि 'तरुण'–काव्य में उपस्थित युग–बोध, समकालीन समस्याओं को तल–मूल तक पहचानते, उनके निरस्ति की व्यवस्था देते, कुण्ठाओं का अतिक्रमण करते संघर्षरत मनुष्य का ही है।

'तरुण' एक बिल्कुल भिन्न और दुर्लभ प्रजाति के कवि हैं– यह भिन्नता एवं दुर्लभता इस रूप में भी है कि 'तरुण' तटस्थ मानव–बोध के कवि नही, आत्मस्थ मानव–बोध के कवि है। इसलिए उनकी कविताओं मे आत्म–भर्त्सना का एक विशेष विचारक

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'अब जा कर', पृष्ठ 85
2 'आँधी और चाँदनी' 'नव मानव', पृष्ठ 56

स्वर उभरता है, जो प्राय अन्य कवियों में नहीं मिलता, न ही उनकी कविताओ मे भाषा और सर्जना का वह अभिनेता एव अभिनायक रूप ही मिलता है, जो समूहगान के अनुवादी–स्वर या फैशन की तरह अनुकरणवादी कवियों एवं कविताओं में मिलता है। वस्तुतः 'तरुण' का कवि अपनी जवाबदेही से बचकर–आत्मभर्त्सना से बचकर लोक–भर्त्सना का कृत्रिम प्रगति–वाद्य बजाने का पक्षधर नही है। यदि कवि की भाषा–सर्जना मानव–चेतना एवं भाव की मापी है तो 'तरुण' का काव्य मानव–चेतना के सबसे विश्वसनीय और केन्द्रीय अन्तरंग प्रवाह का साहित्यिक अनुमापन रेखांकित करता है। इसमे सन्देह नही कि ऐसी सहज, आत्मस्थ एव आत्मभर्त्सनापूर्ण काव्य–पंक्तियाँ सम्पूर्ण हिन्दी लेखन में सिर्फ 'तरुण' काव्य में ही उपलब्ध होती है–

"मरणधर्मा, क्रूरकर्मा, चार फुटे–
हर क्षण –
अपने ही विनाश की कला में जुटे–
जेब में पलीता लिए और–
सिर पर गट्ठर ले सूखी घास के।
आखिर हम आदमी ही तो हैं–
हाड़–माँस के!" [1]

कवि 'तरुण' की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता उनके रचना–ससार की अप्रतिम भाव–ग्राहिता है– उनका कवि संवेदना और अनुभूति के क्षुद्रतम कण को भी इतनी आवर्द्धक व्याप्ति और विस्तार दे देता है कि संवेदना–ग्राह्यता की दृष्टि से भोथर, भावहीन एवं धुँधली दृष्टि–क्षमता वाला मनुष्य भी उसे देखे बिना नही रह सकता। उदाहरण के लिए उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ–

"एक चूड़ी टूटती–तो हाय, हो जाता अमंगल।
मेघ में बिजली कड़कती – काँपता सम्पूर्ण जंगल।
भाग्य के लेखे लगाते– एक तारा टूटता तो!
अपशकुन – शृंगारिणी के हाथ शीशा छूटता तो!
दीप की चिमनी चिटकती–चट,तिमिर का भय सताता,
कौन सुनता स्फोट? पर कोई हृदय यदि टूट जाता!" [2]

'हृदय का मूल्य' शीर्षक कविता मे चार उदाहरण देकर 'हृदय का मूल्य' आंकने का संकेत है। इस सकेत–ग्रह के द्वारा यदि हृदय के मूल्य पर विचार किया जाये तो विदित होगा कि जो सर्वाधिक मूल्यवान् है, वही उपेक्षित है।

यह भली–भाँति प्रमाणित कर देती है कि 'तरुण' के काव्य–संसार में एक भावुक और संवेदनशील मानव–हृदय के दशा–दिशा और वादन–टूटन की हर नन्ही से नन्ही अनुगूँज भी ध्वन्यंकित है, लेकिन उनकी कविताओं मे व्याप्त हृदय का यह साम्राज्य अपनी प्रिय पृथ्वी के अस्तित्व के विस्तार एवं साम्राज्य के साथ–साथ इतना एकाकार हो गया है कि पृथ्वी की हर नन्हीं अनुगूँज उनके हृदय की अनुगूँज बन गई है–

"जहाँ पक्षी, गीत, लहरें, पवन, लाली, छाँव–
अहा, पृथ्वी ही रही नित
सभी के हित–

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'हम शिल्पी सत्रास के', पृष्ठ 18
2 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'धोखा हुआ', पृष्ठ 60

प्यार करने के लिए अनुकूल शीतल ठाँव।" [1]

जीवन–सवेदना पर नूतन प्रकाश डालने वाली विभिन्न कविताओ मे कवि की अन्तर्वेदना फूट पड़ी है। वर्तमान युग की सामाजिक विवशताओ, विसगतियों एवं विद्रूपताओ का निरूपण करते हुए कवि ने एक ओर यथातथ्य चित्रण किया है तो दूसरी ओर उससे हताश न होकर चुनौती के रूप मे अगीकार किया है। इस विषय की कविताओ मे प्रज्ञा एव प्रतिभा का सहज समन्वय दृष्टिगत होता है। 'आत्मकथा' शीर्षक कविता मे कवि की सर्वानुभूति वस्तुत आज के युग की सर्वानुभूति है। प्रारम्भिक पंक्तियो की बानगी प्रस्तुत है–

"हम जीवितों की तरह कभी जिए ही नहीं,
हमें बलात् जिलाया गया!
बात हमारे गले कुछ उतरी ही नहीं;
बाँस की नाल से जबरदस्ती,
हमें सब कुछ बना–बनाया पिलाया गया।" [2]

हमारे समाज में नैतिक मूल्यों की जो गिरावट आई है अथवा संवेदनहीनता के पक्षाघात से ग्रस्त मानव की जो दारुण दशा दिखाई दे रही है, उसके पीछे राजनीति की नीति–विहीन गतिविधियाँ ही मुख्य मारण बनी है। महाकवि 'तरुण' की प्रसिद्ध कविता 'राजनीति की सांभर झील' इस दृष्टि से विशेष पठनीय है। कविता के ये बोल कितने मार्मिक हैं–

"आकांक्षा, सम्बन्ध, मुसकान, प्रतीति,
कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति–
कुछ भी डालो, सब कुछ उसमें गल–सड़ कर हो जाता है–
राजनीति, राजनीति, राजनीति!" [3]

जीवन की शुष्कता, निरीहता और अन्यमनस्कता से उकता कर कवि का सरस हृदय किसी शान्त एवं एकान्त प्रान्त में दो पल के लिए विश्राम चाहता है। कवि के शब्द–चित्र मे कितनी ताजगी एव तलस्पर्शिता है–

"धरती पर सरस सलोना,
एक चाहिये कोमल कोना–
थकी पाँख ले जिधर उड़ सकूँ, जब हो जाए शाम!
कहीं तो लेने दो विश्राम!
मधुर जहाँ की चिकनी छाया–
सहला दे रे दुखती काया!
कटें उसी विश्वास–कुंज में, जीवन के दो याम!" [4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'तरुण' के काव्य मे अनेक सूक्ष्म भावो, जीवन–मूल्यों तथा उच्चतम जीवन–आदर्शों के प्रति कवि का दृढ विश्वास एवं उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। उसके काव्य में आत्म–स्वातन्त्र्य की उज्ज्वल भावना, प्रजातान्त्रिक–मूल्य, अदम्य पौरुष, साहस, स्फूर्ति, अपराजेयता, करुणा, स्नेह, त्याग, सेवा, समर्पण आदि विषयक सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना और विविध गंधों, ध्वनियों, रंगों, मिश्रित रंगों, कलाओ तथा उसके अपने गीतों आदि के प्रति कवि–हृदय की सवेदनशीलता एक विस्तृत आयाम तथा सुदृढ़ आधार प्रदान करते है।

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'धोखा हुआ', पृष्ठ 80
2 'आँधी और चाँदनी' 'आत्मकथा', पृष्ठ 53
3 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'राजनीति की साँभर झील', पृष्ठ 446
4 वही, 'कहीं तो लेने दो विश्राम', पृष्ठ 98

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'प्रथम किरण' के 'निवेदन' से
2 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'प्रथम किरण' के 'आशीर्वाद' से
3 डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' की 'भूमिका' से
4 डॉ0 रामकुमार शर्मा 'कवि 'तरुण' के काव्य मे प्रेम और सौन्दर्य', पृष्ठ 53
5 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'ऑधी और चॉदनी' की 'अपनी बात' से
6 डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त 'डॉ0 'तरुण' दृष्टि और सृष्टि', पृष्ठ 129
7 (स0) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 67
8 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'प्रथम किरण' के 'आशीर्वाद' से
9 (स0) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 5
10 डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' की 'भूमिका' से
11 (स0) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 168–169
12 डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी 'कवि 'तरुण' का काव्य सवेदना और शिल्प', पृष्ठ 138–139
13 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'ऑधी और चॉदनी' की 'अपनी बात' से
14 (स0) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 89
15 (स0) डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा 'कवि 'तरुण' का काव्य–ससार', पृष्ठ 32
16 (स0) डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा · 'कवि 'तरुण' का काव्य–ससार', पृष्ठ 34
17 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' की 'कुछ अपनी बात', से